चमकते सितारे

[जैन इतिहास के ११ प्रसिद्ध मनीषी आचार्यों
की जीवन कथा]

लेखक
अध्यात्मयोगी उपाध्याय श्री पुष्करमुनि जी महाराज के सुशिष्य
श्री देवेन्द्र मुनि, शास्त्री

प्रकाशक
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
शास्त्री सर्कल, उदयपुर (राज.)

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थमाला : पुष्प ११६

☆ उपाध्याय श्री पुष्करमुनि जी महाराज के दीक्षा स्वर्ण जयन्ती समारोह पर

☆ पुस्तक
चमकते सितारे

☆ लेखक
देवेन्द्र मुनि, शास्त्री

☆ विषय
जैन जगत के ज्योतिर्धर आचार्य

☆ प्रथम प्रवेश
सन १९७९
ज्येष्ठ वि० सं० २०३६

☆ मूल्य—तीन रुपये मात्र

☆ मुद्रक
श्रीचन्द सुराना के लिए
दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा

प्रकाशकीय

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय स्वल्प समय में ही नित-नये अभिनव उपहार लेकर प्रबुद्ध पाठकों के समक्ष उपस्थित होता रहा है। पहले भगवान महावीर की पच्चीसवीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य में और उसके पश्चात् श्रद्धेय सद्गुरुवर्य उपाध्याय राजस्थान केसरी अध्यात्मयोगी श्री पुष्कर मुनि जी की दीक्षा स्वर्ण जयन्ती समारोह के उपलक्ष्य में उसने साहित्य की सभी विधाओं में अनेक उत्कृष्ट ग्रन्थ रत्न दिये हैं, जिन्हें प्रबुद्ध पाठकों ने बहुत ही पसन्द किया है।

यह सत्य है कि ग्रन्थालय को श्रद्धेय सद्गुरुवर्य तथा साहित्य मनीषी देवेन्द्र मुनिजी का अपूर्व सहयोग प्राप्त होता रहा है जिसके कारण वह उत्कृष्ट जीवनोपयोगी साहित्य प्रकाशित करने में सफल हो सका है। श्रद्धेय सद्गुरुवर्य और उनके शिष्यगण दक्षिण भारत की लम्बी यात्रा करते हुए भी जब भी समय मिला तब अन्य धार्मिक सामाजिक और आध्यात्मिक भावों पर साथ-साथ लिखते भी रहे हैं। गुरुदेव श्री का मन्तव्य है कि एक क्षण का भी प्रमाद न कर कार्य करो। क्योंकि समय वह पक्षी है जो एक बार हाथ से निकल गया

तो वह दुवारा पुन. हाथ मे नही आता अत जितना हो सके समय का सदुपयोग करो। समय के सदुपयोग का सुफल ही है कि यह विराट साहित्य हमे प्राप्त हो सका है।

'अतीत के चलचित्र' और 'चमकते सितारे' इन दोनो पुस्तको मे जैन इतिहास के वे गौरवशाली पृष्ठ है जो सैकड़े वर्षो से प्रेरणा के स्रोत रहे है, पथ-प्रदर्शक रहे है। मुनि श्र ने गहन अध्ययन कर उन पृष्ठो को हमारे समक्ष प्रस्तुत किय है अत हम उनका आभार मानते है।

हमारे अन्य प्रकाशनो की तरह ये प्रकाशन भी पाठको के लिए प्रेरणादायी सिद्ध होगे।

—मन्त्र

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थाल

लेखक की कलम से

इस विराट विश्व में प्रतिपल-प्रतिक्षण सैकड़ों व्यक्ति जन्म लेते हैं और सैकड़ों व्यक्ति क्रूर काल के गाल में समा जाते हैं। न उनके जन्म लेने पर प्रसन्नता होती है और न मरने पर शोक ही होता है। वह अपना जीवन कूकर-शूकर की तरह व्यतीत कर अन्त में संसार से विदा हो जाते हैं। उनका जीवन अर्धदग्ध कंडे की तरह होता है, जो सदा विषय-वासना का, राग-द्वेष का धुँआ छोड़ता रहता है। पर कभी-कभार ऐसे तेजस्वी-वर्चस्वी व्यक्ति भी आते हैं जिनका जीवन निराला होता है। वे सूर्य की तरह तेजस्वी होते हैं, चन्द्र की तरह सौम्य होते हैं। अमृत की तरह मधुर होते हैं। उनका कृतित्व भी अद्भुत होता है। वे शेर की तरह दहाड़ते हुए जन-जीवन में अपूर्व क्रान्ति करते हैं। उनकी क्रान्ति आँधी और तूफान की तरह विध्वंसक नहीं होती, पर शान्ति के लिए वर्षा की तरह निर्माणकारी होती है। वे स्वयं प्रकाशित होते हैं और अपने निर्मल प्रकाश से विश्व को प्रकाशित करते रहते हैं। उनका नाम केवल अपने युग में ही नहीं, अपितु इतिहास के स्वर्णपृष्ठों पर चमकता रहता है। वे धर्म और दर्शन, साहित्य और संस्कृति के निर्माता होते हैं। वे अपने तेजस्वी कार्यों से इतिहास को नया मोड़ देते हैं। विश्व-

ज्योति भगवान महावीर के पश्चात् भी जैन इतिहास मे ऐसे हजारो आचार्य हुए है, जिनका जीवन प्रेरणा का पवित्र स्रोत रहा है। उन्ही आचार्यो मे से कुछ चमकते-दमकते आचार्यो का परिचय और साथ ही तेजस्वी सद्गृहस्थो का परिचय देने का मैंने प्रयास किया है। कुछ परिचय अतीत के उज्ज्वल चरित्र मे तथा कुछ परिचय प्रस्तुत पुस्तक मे देने का प्रयास किया है। इन पुस्तको मे व्यवस्थित रूप से ऐतिहासिक क्रमबद्ध परिचय नही दिया गया है। अपितु जिन महापुरुषो की जीवन-गाथाओ ने मेरे जीवन को प्रभावित किया उन्ही का सक्षेप मे परिचय दिया गया है। मै सोचता हूँ कि ये जीवन-प्रसग प्रबुद्ध पाठको को भी पसन्द आयेगे। वे भी इनसे एक प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य का मै किन शब्दो मे आभार मानूं जिनकी असीम कृपा दृष्टि के कारण ही प्रगति के पथ पर बढ सका हूँ। तथा श्री रमेश मुनि जी, श्री राजेन्द्र मुनि जी, श्री दिनेश मुनि जी की भक्ति-भावना से की गई सेवा-शुश्रूषा भी लेखन कार्य मे अत्यधिक सहयोगी रही है, उन्हे भी विस्मृत नही किया जा सकता। स्नेहमूर्ति श्रीयुत श्रीचन्दजी सुराना ने पुस्तक को मुद्रण कला की दृष्टि से सुन्दर बनाने का जो प्रयास किया है वह भी भुलाया नही जा सकता।

राका केवल्स प्रा. लिमिटेड —देवेन्द्र मुनि
कडपा (आध्र)

समर्पण

जिनके जीवन में अहिंसा की निर्मल गंगा

संयम की सुन्दर सरस्वती

और तप की पवित्र यमुना का

सरस संगम हुआ है

उन्हीं

परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य

उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी महाराज

के कर-कमलों में

सादर, सभक्ति समर्पित

—देवेन्द्र मुनि

अनुक्रमणिका

१

मुनि अवन्तिसुकुमाल

आर्य सुहस्ती प्रबल प्रतिभा के धनी ज्योतिर्धर आचार्य थे। वे अपनी शिष्यमण्डली सहित एक बार उज्जयिनी पधारे और नगर के बाहर उद्यान मे ठहरे। जब शिष्य भिक्षा के लिए नगर मे जाने लगे तब उन्होंने कहा—नगर मे कही पर ठहरने के लिए योग्य आवास मिल सके तो गवेषणा करना। एक श्रमण युगल भद्रा सार्थवाही के यहाँ भिक्षा के लिए पहुँचा। भद्रा ने भक्ति-भाव से विभोर होकर आहार प्रदान किया और पूछा—भगवन् ! आप किन आचार्य के शिष्य है ?

शिष्यो ने बताया—हम आर्य सुहस्ती के शिष्य है। आचार्य प्रवर उद्यान मे विराज रहे हैं, उन्होंने हमे आदेश दिया है कि शहर मे कोई योग्य आवास मिल सके तो अन्वेषणा करना। भिक्षा के साथ हम उसकी भी अन्वेषणा करने हेतु आये है।

भद्रा ने सविनय प्रार्थना करते हुए कहा—भगवन् ! मेरा विशाल भवन खाली पड़ा हुआ है। वह श्रमणो के विराजने के योग्य है। आप आचार्यदेव से

प्रार्थना करें। वे यहाँ पर पधारेंगे तो मुझे महती प्रस न्नता होगी, मै अपने आपको महान् भाग्यशालि समझूँगी।

शिष्यो ने आचार्यदेव को मकान की अनुकूल के सम्बन्ध मे जानकारी दी। आचार्यदेव शिष्यो के स उसके मकान में पधार गये।

भद्रा के एक पुत्र था, वह अत्यन्त सुकुमाल और 'अवन्तिसुकुमाल' के नाम से विश्रुत था। उस पाणिग्रहण बत्तीस श्रेष्ठी पुत्रियो के साथ हुआ जो रूप और सौन्दर्य मे अप्सरा के समान थी। अव सुकुमाल उनके साथ सदा भोगों मे निमग्न रहता थ

रात्रि के प्रथम प्रहर मे आचार्य सुहस्ती अ शिष्यो के साथ स्वाध्याय मे तल्लीन थे। सुमधुर स से नलिनीगुल्म अध्ययन की परिवर्तना चल रही थ महलों में बैठे हुए अवन्तिसुकुमाल के कर्ण-कुहरो वे शब्द गिरे। वह एकाग्रता से उसे सुनने लगा। यह अनुभव होने लगा कि यह वर्णन जो आचार्य कर रहे हैं यह तो मेरा पूर्व परिचित है। मैंने इस अच्छी तरह से अनुभव किया है। कहाँ अनुभव किय इस प्रश्न पर गहराई मे चिन्तन करते हुए, उसे जा स्मरणज्ञान हुआ।

वह उसी क्षण अपने महल से उतर कर जहाँ

आचार्यदेव विराजे थे वहां पर पहुँचा, और नमस्कार कर निवेदन किया—भगवन् ! मैं भद्रा सार्थवाहिनी का पुत्र हूँ। अभी-अभी आप नलिनीगुल्म अध्ययन की परिवर्तना कर रहे थे, उसे वर्तमान मे जानना कठिन है, फिर आपने उसे कैसे जाना ?

आचार्य सुहस्ती ने कहा—श्रमण भगवान महावीर को वाणी से मैंने यह जाना है।

अवन्तिसुकुमाल ने निवेदन करते हुए कहा—भगवन् ! मैं उसी नलिनीगुल्म विमान से च्युत होकर यहां पर जन्मा हूँ। आपश्री के मुखारविन्द से वर्णन सुनकर मेरी स्मृति उद्बुद्ध हो गई। अब मेरी किञ्चित् मात्र भी यहां के वैभव के प्रति अनुरक्ति नही है अत. आप मुझे शीघ्र ही दीक्षा प्रदान करें और साथ ही संथारा भी करायें।

आर्य सुहस्ती ने कहा—आवेश में किया गया निर्णय सही नही होता। तुम शीघ्रता न कर गहराई से चिन्तन कर निर्णय लो। श्रमण जीवन की साधना अत्यन्त कठोर साधना है। मोम के दांतो से लोहे के चने चबाने के समान कठिन है। तुम्हारा शरीर फूल की तरह कोमल है। साधु जीवन के कष्टों को सहन करने मे यह असमर्थ है।

अवन्तिसुकुमाल—भगवन् ! भावुकता के वश

मैंने निर्णय नही किया है। मन में यदि दृढता है तो तन की कोमलता कभी बाधक नही बनती है, अपितु साधक ही होती है, अतः आप अब मुझे शीघ्र ही प्रव्रज्या प्रदान करे।

आर्य सुहस्ती—वत्स ! मै तुम्हे प्रव्रज्या देने को प्रस्तुत हूँ, पर माता भद्रा व पत्नियो की अनुमति अपेक्षित है। क्या तुम उनके राग-पाश को तोड़ सकोगे

अवन्तिसुकुमाल ने माता से और अपनी पत्नियों से प्रव्रज्या की अनुमति मांगी, पर किसी ने भी अनुमति नही दी तो उसने स्वय ही केशलुंचन कर मुनिवेष धारण कर लिया। आर्य सुहस्ती ने उसकी उत्कृष्ट भावना देखकर दीक्षा प्रदान की। दीक्षित होते ही उ. ने यावज्जीवन का अनशनव्रत ग्रहण कर लिया कंटकाकीर्ण झाड़ी के मार्ग में से होकर वह श्मशान मे पहुँचा और वहाँ एकान्त शान्त स्थान मे जाकर ध्यानस्थ हो गया।

मुनि जिस मार्ग से श्मशान मे पहुँचे थे उस रास्ते के नुकीले काँटों से उनके पैर विंध गये थे। पैरो से रक्त झरने लगा था। एक शृगालिनी रक्त-बूंदो को देख कर वहीं पहुँच गई जहां पर मुनि ध्यानस्थ थे। उसके साथ उसके बच्चे भी थे। उन सभी ने मुनि पर आक्रमण किया। शृगालिनी ने प्रथम प्रहर में मुनि के एक

पैर को खा लिया तो उसके बच्चों ने दूसरे पैर को निगल लिया, अपार वेदना होने पर भी मुनि आत्मभाव में स्थित रहे। दूसरे प्रहर में मुनि की जंघाओं को चीर दिया, तीसरे प्रहर में उनके पेट की आंतों को चबाने लगे और चतुर्थ प्रहर आते ही मुनि ने आयुष्य पूर्ण कर दिया। मन में नलिनीगुल्म विमान घूम रहा था अतः वहीं पर महर्धिक देव बने।

दूसरे दिन प्रातः माता भद्रा और उनकी पत्नियों ने जब मुनि अवन्ति-सुकुमाल को न देखा तो चिन्तित हो गईं। उन्होंने आचार्यदेव से पूछा। आचार्य देव ने कहा—वह जिस नलिनीगुल्म विमान के लिए श्रमण बना था, वह उसे प्राप्त हो गया। घटना सुनकर सभी सिहर उठीं। उनके मन में भी वैराग्य का पयोधि उछालें मारने लगा। उन्होंने भी संयम स्वीकार कर अपने जीवन को परम पवित्र बनाया।

आर्य सुहस्ती ने वर्षों तक धर्म की प्रभावना की और अन्त समय में अनशन कर समाधिपूर्वक आयु पूर्ण किया। उनका समय वीर निर्वाण सं० २४५ से २९१ के मध्य है।

☆

२

आर्यरक्षित

दशपुर में राजा उदयन का राज्य था। उसके राजपुरोहित का नाम सोम था, और उसकी धर्मपत्नी का नाम रुद्रसोमा था। उसके आर्यरक्षित और फल्गु रक्षित ये दो पुत्र थे। सोमदेव की निष्ठा वेद और उपनिषदों पर थी तो रुद्रसोमा जैनधर्मावलम्बी थी और जैन अगम साहित्य पर निष्ठावान् थी। सोमदेव ने अपने प्यारे पुत्रो को वेदों का सांगोपाङ्ग अध्ययन करवाया। आर्यरक्षित विशेष अध्ययन हेतु पाटलीपुत्र पहुँचा और गंभीर अध्ययन कर जब वह पुनः लौटा तो नगर-निवासियों ने उसका हृदय से स्वागत किया। सभी उसके आगमन से झूम उठे। स्वयं राजा उदयन भी फूला न समाया।

नगर में अपूर्व प्रसन्नता का वातावरण था। सभी उसके प्रकाण्ड पाण्डित्य की चर्चा कर रहे थे। आर्यरक्षित सभी के उपहारो को लेते हुए जब माँ के पास नमस्कार के लिए पहुँचा तब माँ के चेहरे पर

उल्लास न देखा तो उसका माथा ठनका ! अरे ! मा की यह कैसी उपेक्षा है। माँ को मेरे अध्ययन से क्यो नही परितोष हुआ। जिस विद्या से माँ को आनन्द नही, वह विद्या किस काम की ?

नमस्कार कर आर्यरक्षित ने माँ से पूछा—माँ ! मैं दीर्घ काल के पश्चात् अध्ययन कर आज लौटा हूँ, पर तू मुझे देखकर क्यों नही प्रसन्न हुई ?

वत्स ! तू मेरे कलेजे का टुकडा है, तुझे देखकर प्रसन्नता होनी स्वाभाविक है। पर पुत्र, तूने अन्यान्य शास्त्रों का अध्ययन तो किया है किन्तु दृष्टिवाद अभी तक तूने नही पढा है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि तू दृष्टिवाद का अध्ययन कर। जब तू दृष्टिवाद का अध्ययन कर लौटेगा तो मेरी प्रसन्नता का पार न रहेगा।

आर्यरक्षित—माँ मुझे बताओ, दृष्टिवाद के ज्ञाता कौन है ? मैं किसके पास अध्ययन करूँ ?

पुत्र ! इक्षुवन मे आचार्य तोसलिपुत्र विराज रहे रहे है, जो जैन सघ के एक ज्योतिर्धर आचार्य हैं। वे दृष्टिवाद के ज्ञाता है तू उनके पास जा और दिल लगाकर अध्ययन कर।

प्रात होते ही माँ की आज्ञा से आर्यरक्षित आचार्य तोसलिपुत्र के पास अध्ययनार्थ प्रस्थित हुआ।

कुछ मार्ग तय किया कि उसके पिता का परम मित्र शाखापुर का निवासी महाद्विज वृद्ध मिला, जो आर्य रक्षित से मिलने के लिए आ रहा था, उसके हाथ में इक्षु थे। इक्षु का प्रस्थान के समय मिलना अत्यन्त शुभ माना जाता है। आर्यरक्षित ने इक्षु गिने। वे साढ़े नौ थे। उसे सहज ही परिज्ञात हुआ कि वह जिस दृष्टिवाद का अध्ययन करने जा रहा है उसके साढे नौ अध्ययन पढ़ सकेगा। महाद्विज ने आग्रह किया कि एक बार तुम पुनः मेरे साथ घर चलो किन्तु आर्यरक्षित ने कहा—मैं घर इस समय नही चल सकता। दृष्टिवाद का अध्ययन करके ही लौटूँगा तुम मां को जाकर सम्पूर्ण वृत्त सुना देना।

आर्यरक्षित इक्षुवन पहुँचा। उसने बाहर से उपाश्रय मे झाँककर देखा सभी श्रमण स्वाध्याय में तल्लीन है। वह उपाश्रय में जाना चाहता था पर जैन वन्दना-विधि का परिज्ञान न होने से कुछ समय तक उपाश्रय के बाहर ही चंक्रमण करता रहा। कुछ समय के पश्चात् आचार्यदेव को वन्दन करने हेतु ढड्ढर नामक श्रावक आया। उसके तेजस्वी चेहरे से ही परिज्ञात हो रहा था कि वह जैनदर्शन का मर्मज्ञ है। आर्य रक्षित ने सोचा, यह जिस प्रकार वन्दना आदि विधि करेगा, मै भी उसी का अनुसरण करूंगा। उस दृष्टि से

वह भी ढड्ढर के पीछे-पीछे उपाश्रय मे प्रविष्ट हुआ। ढड्ढर ने जिस प्रकार आचार्य देव आदि मुनिवरो को नमस्कार किया उसी प्रकार उसने भी सारी क्रियाएँ की।

आचार्य तोसलिपुत्र की पैनी दृष्टि उस पर टिकी। उन्होने देखा यह कोई महान् प्रतिभा का धनी है। आचार्य ने उससे पूछा—आर्य! तुम्हारा गुरु कौन है?

आर्यरक्षित ने मधुर मुस्कान विखेरते हुए कहा—इस समय मेरा गुरु ढड्ढर श्रावक है।

आचार्य उससे अगला परिचय पूछना चाहते थे कि आचार्य के सन्निकट बैठे हुए एक मुनि ने कहा—गुरुदेव! यह राज-पुरोहित सोमदेव एव सुश्राविका रुद्र-सोमा का पुत्र है। यह वैदिक साहित्य का उद्भट विद्वान है, षट्दर्शन का परिज्ञाता है। कल ही अध्ययन कर यह पाटलीपुत्र से लौटा है जिसकी प्रसन्नता मे सारे नगर मे उत्सव मनाया गया था।

आचार्य तोसलिपुत्र ने उसके आने का कारण जानना चाहा। आर्यरक्षित ने कहा—मेरी माँ ने दृष्टि-वाद के अध्ययन के लिए आपकी सेवा मे भेजा है। मैं दृष्टिवाद का अध्ययन करना चाहता हूँ।

आचार्य ने अपने विशिष्ट ज्ञान से जाना कि यह जैन शासन का महान् प्रभावक आचार्य होगा।

आचार्य ने कहा—आर्य ! मैं तुम्हें दृष्टिवाद का अध्ययन कराने के लिए प्रस्तुत हूँ, पर एक शर्त है कि तुम्हे श्रमण वेष धारण करना होगा और सच्चा जैन श्रमण बनना होगा।

आर्यरक्षित—गुरुदेव ! मैं श्रमणधर्म स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ, पर मेरा नम्र निवेदन है कि नगर निवासियों का व राजा का मेरे पर अत्यन्त स्नेह है। वे स्नेह के कारण कोई बाधा उपस्थित न करें अतः आप मुझे दीक्षा प्रदान कर शीघ्र ही यहाँ से अन्यत्र प्रस्थान करे तो श्रेयस्कर रहेगा।

आर्यरक्षित का प्रस्ताव आचार्यदेव को उचित ... हुआ। दीक्षा देकर उन्होने अन्यत्र प्रस्थान कर दिया। आर्यरक्षित की सूक्ष्मग्राहिणी प्रतिभा ने कुछ ही दिनो मे एकादश अगो का अध्ययन पूर्ण किया। दृष्टिवाद का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। उस समय आचार्य वज्र स्वामी दृष्टिवाद के दश पूर्वो के पूर्ण ज्ञाता थे, जो उज्जयिनी में थे। आचार्य तोसलिपुत्र ने अन्य स्थविर सन्तों के साथ आर्यरक्षित को आचार्य वज्र के पास प्रेषित किया। आर्यरक्षित क्रमशः विहार करते हुए उज्जयिनी पधारे। उज्जयिनी में महास्थविर भद्रगुप्तसूरि विराज रहे थे। जो अत्यधिक वृद्ध हो चुके थे, शरीर जर्जरित हो चुका था,

तः सर्वप्रथम आर्यरक्षित उनकी सेवा में पहुँचे। द्रगुप्त सूरि ने आर्यरक्षित को देखकर कहा—तुम ीक समय पर आये हो, तुम्हारे मधुर सहयोग से ुझे समाधिमरण प्राप्त होगा। कुछ समय तक मेरी वा मे रहो। आचार्य के आदेश से वे सेवा मे रहे, और नकी सेवावृत्ति को देखकर आचार्य बहुत ही प्रसन्न ए। आचार्य भद्रगुप्त के स्वर्गारोहण के पश्चात् वे ाचार्य वज्र की सेवा में पहुँचे। आर्यरक्षित के आगमन पूर्व रात्रि मे आचार्य वज्र ने एक स्वप्न देखा—कि क अतिथि आया है जो मेरे पयः पूरित पात्र को प्रायः ो गया है, पर कुछ अवशिष्ट रह गया। आचार्य वज्र अपने स्वप्न को सन्तो को बताते हुए कहा—कि आज ोई विशिष्ट अतिथि आयेगा और मेरे से पूर्वों का ान प्राप्त करेगा, पर दश पूर्वों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त ही कर सकेगा। आचार्य वज्र ने अपनी बात पूर्ण की क आर्यरक्षित ने सन्तो के साथ आचार्य वज्र के उपा- ाय मे प्रवेश किया। आचार्य वज्र ने उनका स्वागत रते हुए पूछा कि आप कहाँ से आ रहे है और कोई वशेष प्रयोजन भी है क्या ?

आर्यरक्षित ने कहा—मै आचार्य तोसलिपुत्र का ाष्य आर्यरक्षित हूँ। आचार्यदेव की आज्ञा से दृष्टि- ाद का अध्ययन करने हेतु आपकी सेवा मे उपस्थित आ हूँ।

आचार्य वज्र ने अध्ययन प्रारम्भ करवाया। आं
रक्षित मनोयोगपूर्वक अध्ययन करने लगे। उन्होंने
पूर्व का अध्ययन पूर्ण कर लिया। दशवे पूर्व की चौवी
जविकाओ का अध्ययन भी सम्पन्न हो चुका था। आ
का अध्ययन चल रहा था।

इधर माता रुद्रसोमा को पुत्र की याद सता र
थी। कुछ दिनों तक तो वह पुत्र को भुलाने का प्रया
करने लगी पर ज्यो-ज्यो पुत्र को भुलाने का प्रया
करती थी त्यो-त्यो पुत्र की स्मृति अधिक आने लगी
एक दिन उसके धीरज का बाँध टूट गया। उसं
आँखों से आँसू बरसने लगे। पुरोहित सोमदेव ने कहा-
कुछ धैर्य रखो, मैं अभी आर्यरक्षित को बुलाने के लि
फल्गुरक्षित को भेजता हूँ। रुद्रसोमा ने कहा—यह बहु
ही अच्छा है। रुद्रसोमा ने फल्गुरक्षित को कहा—अपे
ज्येष्ठ भ्राता को बुलाकर लाओ। पर वह साधु ब
चुका है। ऐसे नही आयेगा अतः तुम उससे कहना वि
माँ तुम्हारी स्मृति से पागल हो रही है, तुम्हे इतन
निर्मोही नही होना चाहिए। तुमने जिस श्रेष्ठ मा
को ग्रहण किया है उस मार्ग को माता-पिता, बन्
आदि भी स्वीकार करना चाहते है अतः उनके उद्धा
हेतु तुम्हे शीघ्र ही आना चाहिए।

फल्गुरक्षित माँ के सन्देश को लेकर आर्यरक्षित

; पास पहुँचा, और माँ की वात कही। आर्यरक्षित ' कहा—मेरा अध्ययन चल रहा है, मैं इस समय नही ा सकता ! यदि तेरा मेरे पर स्नेह है तो तू साधु वन ा । आर्यरक्षित के त्याग वैराग्यपूर्ण उपदेश को ुनकर फल्गुरक्षित ने सयम स्वीकार कर लिया। ध्ययन निरन्तर चल रहा था। एक दिन आर्यरक्षित वज्र स्वामी से प्रश्न किया—भगवन्! अभी तक कतना अध्ययन अवशिष्ट है?

आचार्य वज्र ने कहा— वत्स! तुम इसकी चिन्ता ा करो, निरन्तर अध्ययन करते रहो। अभी तक ुम्हारा अध्ययन सरसो के दाने जितना हुआ है और ुमेरु जितना अवशिष्ट है। अतः मन लगाकर प्रयत्न ारो, सफलता देवी तुम्हारे चरण चूमेगी।

आर्य रक्षित विशेष अध्यवसायपूर्वक अध्ययन मे सलग्न हो गये। काफी समय वीत गया। एक दिन फल्गु रक्षित ने पुनः माँ की वात को दुहराई और कहा— भाई, इतने निष्ठुर न वनो, उन्हे प्रतिवोध देकर उनका भी उद्धार करो। फल्गुरक्षित ने वात इस तरह से कही कि आर्यरक्षित को वह वात जच गई, उन्होने आचार्य वज्र से कहा—भगवन्! मेरी इच्छा है कि माता-पिता को प्रतिवोध देकर पुनः आपकी सेवा मे आकर अध्ययन करूँ।

आचार्य वज्र ने गम्भीरता से चिन्तन किया औ
कहा, मेरा आयुष्य अब कम है, तुम पुनः लौटकर आओ
तब तक मै जीवित नहीं रह सकूंगा, अतः तुम्हा
ज्ञान अपूर्ण ही रहेगा। तुम सहर्ष जाओ, और अ
परिजनों को साधना के महामार्ग में प्रवेश कराओ
आचार्य वज्र यह भी जानते थे कि आर्यरक्षित इ
अधिक ज्ञान प्राप्त न कर सकेगा। दश पूर्व का ज्ञान
मेरे साथ ही लुप्त हो जायेगा अतः उन्होने जाने
अनुमति दे दी।

आर्य रक्षित सन्तों के साथ विहार करते हु
पाटलीपुत्र पहुँचे। आचार्य तोसलिपुत्र को अपने अध्यय
से परिचित किया। अपने शिष्य की दक्षता देख
आचार्य तोसलिपुत्र बहुत ही प्रसन्न हुए। वे बहुत
वृद्ध हो चुके थे अत. उन्होने अपना उत्तराधिकार आ
रक्षित को प्रदान किया। आर्यरक्षित वहाँ से विहा
कर दशपुर पहुँचे। राजा से लेकर रंक तक सभी
उनका हृदय से स्वागत किया। आर्यरक्षित के पाव
प्रवचन को सुनकर राजा ने जैनधर्म ग्रहण किया
अपने दोनों ही पुत्रो को श्रमण वेश मे देखकर माँ क
हृदय आनन्द से झूम उठा। वह पक्की निर्ग्रन्थ श्राविक
थी अतः उसे बहुत ही प्रसन्नता थी। पर सोमदेव ने, जो
कट्टर वैदिक परम्परा का अनुयायी था, कहा—
पुत्र ! श्रमण वेष का परित्याग कर शीघ्र ही गृहस्थाश्रम

मे प्रवेश करो। मैंने तुम्हारे लिए अनेक याज्ञिक कन्याएँ देख रखी है। उनके साथ विवाह कर वंश वृद्धि करो। गृहस्थाश्रम से बढकर अन्य कोई आश्रम नही है।

आर्यरक्षित ने पिता के तर्कों का खण्डन कर श्रमण जीवन के महत्त्व का प्रतिपादन किया। सोमदेव आर्यरक्षित की अकाट्य युक्तियो का खण्डन न कर सका। वह केवल इतना ही कह सका कि तुम जरा अपनी प्यारी माँ की ओर देखो, उसकी मनसमाधि के लिए गृहस्थाश्रम स्वीकार करो।

आर्यरक्षित ने माँ से कहा—माँ! क्यो वृथा मोह मे उलझ रही हो। ससार तो असार है, संयम ही सार है, उसे ग्रहण कर अपने जीवन को चमकाओ। तुम्हारी पवित्र प्रेरणा से ही मैं दृष्टिवाद के अध्ययन के लिए गया। क्या तुम्ही ससार की मोह-माया मे उलझोगी? माता तुम सच्ची वीरागना हो! तुम्हें साधना के क्षेत्र मे प्रवेश कर अपने सच्चे वीरत्व का परिचय देना है।

पुत्र के उपदेश से माँ के मन में वैराग्य भावना जागृत हुई। उसने ससार का परित्याग कर दीक्षा ग्रहण की। उसके पश्चात् एक-एक सदस्य साधना के मार्ग में आगे बढने लगा और अन्त मे पिता सोमदेव ने भी दीक्षा ग्रहण की। इस प्रकार आर्यरक्षित ने अपने पूरे परिवार को आर्हती दीक्षा प्रदान कर उनके जीवन का कल्याण किया।

आचार्य आर्यरक्षित के घृतपुण्यमित्र, वस्त्र पुण्यमित्र और दुर्बलिकापुण्यमित्र ये तीन विशिष्ट लब्धिधारक शिष्य थे। तीनों ही प्रबल प्रतिभाधारी थे। घृतपुण्यमित्र में वह शक्ति थी कि जहां पर घृत का पूर्ण अभाव होता था वहाँ पर भी वे प्रचुर मात्रा मे घृत प्राप्त कर सकते थे। कंजूस से कंजूस व्यक्ति भी उन्हें प्रसन्नता से घी देता था।

वस्त्रपुण्यमित्र में वह शक्ति थी कि चाहे जितने वस्त्र उन्हे सुगमता से मिल सकते थे। जिनके पास स्वयं भी तन ढाँकने को वस्त्र नही होते थे वे भी उन्हे वस्त्र देने में आनन्द का अनुभव करते थे।

दुर्बलिकापुण्यमित्र की शक्ति निराली थी वे अपनी लब्धि-बल से चाहे जितना घृत आदि से सन हुआ आहार करते थे। वह सभी उन्हे हजम हो जाता था। वे सदा अध्ययन-चिन्तन मे लीन रहते थे। ध्यान योग की साधना विशेष रूप से चलती थी। प्रज्ञा की निर्मलता से उन्होने स्वल्प समय में ही नौ पूर्वो का अध्ययन पूर्ण कर लिया था। अधीत श्रुत कहीं विस्मृत न हो जाये अतः रात-दिन उसी की परिवर्तना में लीन रहते थे।

दुर्बलिकापुण्यमित्र के पारिवारिक जन दशपुर में रहते थे और वे बौद्धधर्म के अनुयायी थे। वे एक बार

आर्यरक्षित की सेवा में उपस्थित हुए, उन्होने वार्तालाप के प्रसग मे कहा—ज्ञात होता है कि जैन-साधना पद्धति मे ध्यान का कोई भी महत्त्व नही है।

आर्यरक्षित ने कहा—तुम्हारी यह धारणा भ्रान्त है। तुम्हारा ही बन्धु पुष्यमित्र गजब का ध्यानी है जिसके कारण ही वह दुर्बल दिखाई दे रहा है।

उन बौद्ध अनुयायियो ने उपहास करते हुए कहा—सरस आहार के अभाव मे ये कृश हो गये होगे, कही कोई ध्यान की साधना से कृश होता है?

आर्यरक्षित ने प्रतिवाद करते हुए कहा—जैन शासन मे घृत आदि सरस आहार की कोई कमी नही है। इसे खूब ही सरस आहार प्राप्त होता है किन्तु सतत अध्ययन और ध्यान-साधना मे लगे रहने के कारण यह कृश है। सरस आहार करने के बावजूद भी योग की साधना से यह कृश रहता है। यदि तुम्हे मेरे कथन मे विश्वास न हो तो तुम इसे अपने आवास मे रखकर निरन्तर स्निग्ध भोजन कराकर मेरे कथन की वास्तविकता देख सकते हो।

बन्धुजनों के अत्यधिक आग्रह से आचार्य आर्यरक्षित ने दुर्बलिकापुष्यमित्र को उनके वहाँ पर रहने का आदेश दिया। निरन्तर सरस आहार करने पर भी जब वे दुर्बल ही रहे तब उन्हे आचार्यदेव के कथन पर

विश्वास हुआ और अपनी भूल ज्ञात हुई। दुर्बलिका पुष्यमित्र ने पारिवारिको को प्रतिबोध दिया और उ जैनधर्मानुयायी बनाया।

आर्यरक्षित के चार प्रज्ञा-सम्पन्न शिष्य थे दुर्बलिकापुष्यमित्र, विन्ध्य, फल्गुरक्षित, और गोष्ठामाहिल। हम पहले बता चुके है कि फल्गुरक्षित आर्य रक्षित के लघु भ्राता थे और गोष्ठामाहिल उनके मामा थे। ये चारो सदा अध्ययन में मग्न रहते थे। एक दिन मुनि विन्ध्य ने आचार्यदेव से निवेदन किया—गुरुदेव ! मै पाठ शीघ्र ही भूल जाता हूँ अ मुझे पृथक् वाचना दी जाये। आर्यरक्षित ने कहा- यदि मैं तुम्हे ही लक्ष्य मे रखकर व्याख्या करूँ तो सभ के अध्ययन में व्याघात होगा अतः तुम दुर्बलिका पुष्यमित्र से अध्ययन करो, जिससे तुम शीघ्र ही आगे बढ सकोगे।

आर्यरक्षित की आज्ञा को शिरोधार्य कर मुनि विन्ध्य ने मुनि दुर्बलिकापुष्यमित्र से अध्ययन प्रारम्भ किया। कुछ दिनों के पश्चात् दुर्बलिका पुष्यमित्र ने आचार्य से निवेदन किया—गुरुदेव ! वाचना में लगे रहने से मैं स्वयं अध्ययन नहीं कर पा रहा हूँ और साथ ही पठित श्रुत भी परिवर्तना के अभाव में विस्मृत हो रहा है, अतः मुझे योग्य मार्गदर्शन दें। यदि मैं वाचना

देने मे ही लगा रहा तो नौवे पूर्व की विस्मृति हो जायेगी।

दुर्बलिकापुष्यमित्र के इस कथन से आर्यरक्षित चिन्तित हो गये। इसके जैसा प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति भी विस्मृति की शिकायत करता है तो स्वल्प प्रतिभाधारी मुनियो की क्या स्थिति होगी। अत. उन्होने चरण करणानुयोग, धर्मकथानुयोग, गणितानुयोग और द्रव्यानुयोग को पृथक्-पृथक् विभाजित किया। अंग और उपाङ्गों को मुख्य रूप से चरणकरणानुयोग मे, उत्तराध्ययन, ज्ञाता आदि को धर्मकथानुयोग मे; सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति आदि को गणितानुयोग मे और दृष्टि- वाद को द्रव्यानुयोग में सस्थापित किया।

एक वार आर्यरक्षित मथुरा में विराज रहे थे। उस समय प्रथम देवलोक का शक्रेन्द्र श्री सीमधर स्वामी के पास दर्शन के हेतु पहुँचा। सीमधर स्वामी से निगोद की सूक्ष्मतम व्याख्या सुनकर वह अत्यन्त उत्साहित हुआ। उसने भगवान से निवेदन किया—भगवन्! क्या वर्तमान में भरतक्षेत्र मे इस प्रकार निगोद की व्याख्या करने वाले कोई विद्वान् आचार्य या सन्त है? यदि हैं तो कौन है? कहाँ हैं?

सीमंधर स्वामी ने आर्यरक्षित का नाम वताया और कहा कि वे इस समय मथुरा मे है।

शक्रेन्द्र सीधा मथुरा आया और उसने एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाया जिसके हाथ थर-थर कांप रहे थे, पैर लड़खड़ा रहे थे, कमर झुकी हुई थी, और केश चाँदी के समान चमक रहे थे। भयकर रूप से खाँसी और कफ का प्रकोप था। आँखो में से पानी टपक रहा था, गीड आ रहे थे। उसने सच्चे जिज्ञासु की भांति आर्यरक्षित से निगोद के सम्बन्ध मे प्रश्न किया। आर्य रक्षित ने निगोद का गम्भीर विश्लेषण किया जिसे सुनकर शक्रेन्द्र का सिर श्रद्धा से झुक गया।

उन्होने द्वितीय प्रश्न किया—भगवन्! मै बहुत ही वृद्ध हो चुका हूँ कृपा करके बताइये अभी मेरा कितना आयु अवशिष्ट है ?

आर्यरक्षित ने वृद्ध की ओर देखा। उनकी रेखाओं पर उनकी दृष्टि गई। उन्होने उपयोग लगाकर कहा—तुमने कृत्रिम वृद्ध का रूप बनाया है, तुमने जितना आयुष्य भोगा है उससे अधिक अवशिष्ट है। तुम्हारा पूर्ण आयुष्य दो सागर का है और तुम सौधर्म देवलोक के शक्रेन्द्र हो।

शक्रेन्द्र अपने आपको छुपा न सका, वह प्रकट हुआ। उसने भगवान सीमधर स्वामी की घटना बताई और नमस्कार कर ज्यों ही जाने के लिए प्रस्तुत हुआ त्यो ही आर्यरक्षित ने कहा—आप कुछ समय

तक ठहरे, क्योकि सभी शिष्य भिक्षा के लिए नगर मे गये हैं। वे आपको देखकर धर्म के प्रति अधिक श्रद्धा-निष्ठ होंगे।

शक्रेन्द्र ने निवेदन किया—भगवन्! इससे लाभ के बजाय हानि अधिक होने की सम्भावना दीखती है। मेरे दिव्य रूप और ऐश्वर्य को देखकर अनेक सन्त निदान करेंगे। अतः मेरा न रहना ही उपयुक्त है। शिष्यो को विश्वास दिलाने के लिए मैं मकान का द्वार विपरीत दिशा में कर देता हूँ।

भिक्षा के लिए गये हुए मुनि जब पुनः लौटे तो उन्हे उपाश्रय का द्वार न मिला, वे इधर-उधर ढूँढ़ने लगे। आर्यरक्षित ने अन्त मे उन्हे बताया। सभी शिष्य विस्मित थे, उन्होने इसका रहस्य जानना चाहा। आचार्यदेव ने शक्रेन्द्र के आगमन की सम्पूर्ण घटना कह सुनाई। सभी के मन में यह बात कचोटने लगी कि शक्रेन्द्र के आने पर भी हम उसे नही देख सके।

आर्यरक्षित एक युगप्रवर्तक आचार्य थे। उन्होने परम्परा की दृष्टि से अनेक बातो मे देश-काल के अनुसार परिवर्तन किया। उस समय श्रमण एक ही पात्र रखा करते थे पर आर्यरक्षित ने वर्षाऋतु के चार माह मे द्वितीय मात्रिक पात्र रखने का विधान

किया।[१] साध्वियाँ साध्वियो के पास ही आलोयणा करती थी, आर्यरक्षित ने कहा कि साध्वियाँ साधुओं के पास भी आलोयणा कर सकती है।[२]

एक बार आर्यरक्षित पाटलीपुत्र पधारे। आचार्य देव के पावन-प्रवचनो को सुनकर राजा चन्द्र जैन धर्मानुयायी बना।

आर्यरक्षित के शिष्य भी बड़े योग्य थे। तार्किक थे। शास्त्रार्थ में निष्णात थे। एक बार आर्यरक्षित के मथुरा से प्रस्थान करने के पश्चात् नास्तिक विज्ञ वहाँ पर आये और उन्होंने अपने अकाट्य तर्कों से आस्तिको को पराजित कर दिया। उस समय गोष्ठामाहिल ने अपनी विशेष प्रतिभा का परिचय दिया और नास्तिको को पराजित कर जैनधर्म की विजय-वैजयन्ती फहराई।

आर्यरक्षित वृद्ध हो चुके थे। अपना उत्तरदायित्व किसे देना यह एक चिन्तनीय प्रश्न था। आर्यरक्षित के परिवार वालों का आग्रह था कि फल्गुरक्षित को दिया

---

१ (क) निशीथसूत्र भाष्य, गा० ४५१५
(ख) निशीथसूत्र चूर्णि, भाग ४, पृ० ८८७
(ग) व्यवहारसूत्र मलयगिरिवृत्ति, पृ० ४१-४२

२ व्यवहारसूत्र मलयगिरि वृत्ति, पृ० १६

जाय। संघ का आग्रह था कि गोष्ठामाहिल इस पद के योग्य है, पर आर्यरक्षित इन दोनों को प्रस्तुत पद के योग्य नही समझते थे। उनकी दृष्टि से इस पद के सर्वथा योग्य दुर्बलिकापुष्यमित्र थे। उन्होने तीन घड़े मँगवाये। एक घड़े मे तेल, दूसरे घड़े मे घृत और तीसरे घड़े मे उड़द भरा गया। तीनो को ही पुनः खाली किया गया। तेल वाले घड़े मे कुछ तेल लगा हुआ था, घी वाले घड़े मे काफी मात्रा मे घी लगा हुआ था और उड़द का घड़ा सर्वथा खाली था। आर्यरक्षित ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—फल्गुरक्षित तेल के घड़े के सदृश है। यह ससार से पूर्ण अनासक्त नही है, कुछ आसक्त है। गोष्ठामाहिल घृत के घड़े के सदृश है, फल्गुरक्षित की अपेक्षा इसमे आसक्ति की मात्रा अधिक है। इसमे यश की कामना अधिक है, किन्तु दुर्बलिकापुष्यमित्र उड़द के घडे के सदृश है जो पूर्ण रूप से अनासक्त है, यश की तनिक भी इच्छा नही है अतः यही आचार्य पद के लिए सर्वथा योग्य है। सभी ने आर्यरक्षित के कथन का समर्थन किया। दुर्बलिकापुष्यमित्र को आचार्य पद प्रदान किया गया।

सघ की समुचित व्यवस्था करने के पश्चात् आर्यरक्षित ने समाधिपूर्वक अनशन कर आयु पूर्ण किया। दुर्बलिकापुष्यमित्र ने अपने कुशल नेतृत्व से संघ का सचालन किया। गोष्ठामाहिल आचार्य पद न मिलने

से वह अन्यमनस्क रहने लगा। उसने संघ का परित्याग किया और सातवें निह्नव के रूप मे विश्रुत हुआ। उसका सम्प्रदाय 'अवद्धक' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसका यह मन्तव्य था कि आत्मा के साथ कर्मों का स्पर्श ही होता है, वे आत्मा के साथ एकीभूत नहीं होते।

आर्यरक्षित का जन्म विक्रम स० ५२ मे हुआ, दीक्षा ७४ में हुई, युगप्रधान पद ११४ में और स्वर्गवास १२७ में हुआ।

—प्रभावक चरि

—भरतेश्वर-बाहुबलि वृ

३

आर्य वज्रस्वामी

अवन्ति देश के तुम्ववन सन्निवेश मे घन श्रेष्ठी रहता था। धनगिरि उसका पुत्र था, जो बाल्यकाल से ही विरक्त था, उसी सन्निवेश मे धनपाल नामक दूसरा श्रेष्ठी था उसके शमित नामक पुत्र और सुनन्दा नामक पुत्री थी। शमित विराट् वैभव और असीम वात्सल्य मे पला-पुसा था किन्तु जन्म से ही वह वैरागी था। राग का बधन उसे बांध नहीं सका। एक बार आचार्य सिहगिरि अपने शिष्यों सहित वहाँ पधारे। उनके पावन प्रवचन को सुनकर विराट वैभव को त्याग कर शमित ने आर्हती दीक्षा ग्रहण की।

श्रेष्ठी धनपाल ने एक दिन धनगिरि के समक्ष सुनन्दा के पाणिग्रहण का प्रस्ताव रखा। धनगिरि ने इन्कारी की, पर अन्त मे धनपाल के अत्यधिक आग्रह मे उसे स्वीकृति देनी पड़ी। धनगिरि और सुनन्दा का विवाह सम्पन्न हुआ किन्तु अनुराग विराग को लम्बे समय तक दबा न सका। सुनन्दा सगर्भा थी। आचार्य सिहगिरि वहाँ पर पधारे और धनगिरि ने भी आचार्य

के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। आर्य शमित और धनगिरि दोनों ही साथ-साथ स्वाध्याय, तप आदि अनुष्ठान करने लगे।

सवा नौ माह पूर्ण होने पर सुनन्दा ने तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। चारों ओर उल्लास का वातावरण छा गया। अभिनव राग-रंग में सभी झूम रहे थे, उसी समय किसी के मुँह से ये शब्द निकल पड़े, 'यदि इस बालक के पिता दीक्षित न हुए होते तो इससे भी अधिक उल्लासमय वातावरण होता।' बालक के कर्ण-कुहरों में ये शब्द गिरे। शब्दो के श्रवण मात्र से ही उसकी आत्मा में एक आध्यात्मिक स्पन्दन हुआ। वह चिन्तन करने लगा कि पिताजी ने बधन को छोड़कर मुक्ति की ओर कदम बढ़ाये हैं, मैं भी कोई ऐसा उपाय करूँ जिससे बंधन से मुक्त हो सकूँ। माँ की ममता निराली है, मैं ही उसका आधार स्तम्भ हूँ अतः सारी ममता उसकी मेरे में केन्द्रित रहेगी अतः अभी से मुझे ऐसा प्रयास करना चाहिए जिससे मैं माँ की ममता से मुक्त हो सकूँ। माता के मोह पर प्रहार करने के लिए उसने उसी क्षण से रोना प्रारंभ किया वह दिन-रात रोने लगा। उसके रोने से सुनन्दा न एक क्षण शान्ति से बैठ सकती थी, न नींद ले सकती थी। न भोजन ही शान्ति से कर सकती थी न अन्य कोई कार्य ही। अनेक उपाय

करने पर पर भी उसका रोना वन्द नही हुआ। सुनन्दा उससे वहुत ही परेशान होगई। सुनन्दा ही नही, सारा परिवार भी परेशान था। छह महीने वीत गये। सुनन्दा सोचने लगी कि सन्तान के अभाव मे भी दु ख होता है और ऐसी सन्तान से अधिक दु·ख होता है। इस दुःख से मुक्त होने का एक ही उपाय है कि यदि इसके पिता आ जाये तो मैं उन्हे सौपकर इस दुःख से मुक्त हो सकती हूँ।

आचार्य सिहगिरि अन्यान्य गाँवों मे परिभ्रमण करते हुए तुम्ववन मे पधारे। आर्य शमित और मुनि धनगिरि भी उनके साथ थे। आचार्यश्री की अनुमति लेकर आर्य शमित व मुनि धनगिरि गोचरी के लिए ज्यों ही प्रस्थित होने लगे, त्यों ही शुभ शकुन हुए। आचार्य सिहगिरि ने उस शकुन के आधार से चिन्तन कर कहा—आज तुम्हे महान लाभ की प्राप्ति होगी। गोचरी मे सचित्त, अचित्त और मिश्र जो भी मिल जाये उसे ले लेना उसमे किञ्चित् मात्र भी संकोच करने की आवश्यकता नही है।

आर्य शमित के साथ मुनि धनगिरि सर्वप्रथम सुनन्दा के यहाँ भिक्षा के लिए पहुँचे। मुनि धनगिरि को देखकर सुनन्दा पुलक उठी। नमस्कार कर वोली—आपके इस पुत्र ने मुझे वहुत ही परेशान कर दिया

है । अनेक उपाय करने पर भी इसका रोना बन्द नही हुआ है । अब आप आ गये है तो इसे सभालिये । मैं अकेली ही कष्ट भोगती रहूँ, यह कहाँ का न्याय है ?

मुनि धनगिरि को आचार्यदेव का कथन स्मरण हो आया । उन्होने लेने के पूर्व स्पष्टीकरण किया कि तुम मुझे प्रसन्नतापूर्वक दे रही हो न ? इसका साक्षी तुम्हारा भाई और तुम्हारी सहेलियाँ है । पुत्र को मैं ले जाऊँगा । उसके पश्चात् तुम्हारा कोई अधिकार न रहेगा । फिर पश्चात्ताप न करना ।

सुनन्दा अत्यन्त परेशान हो रही थी, उसने कहा-आप इसे ले जाइए, मैं कभी भी आपत्ति नहीं उठाऊँगी । आप इसे लेकर मुझे कष्ट-मुक्त कीजिए ।

मुनि धनगिरि ने अपनी झोली फैलाई और सुनन्दा ने अपने प्यारे लाड़ले को उसमे रख दिया । ज्यों ही मुनि उसे लेकर चले त्यो ही वज्र ने रोना बन्द कर दिया । बालक बहुत ही भारी था, अतः धनगिरि की भुजा कुछ झुक गई थी । आचार्य सिहगिरि ने हाथ आगे बढ़ाया । उन्होने मुनि धनगिरि से पूछा—वज्र के समान ठोस और सारभूत क्या वस्तु लेकर आया है ? झोली खोलकर देखा, अन्दर एक तेजस्वी बालक है जो आचार्य को देखकर मुस्करा रहा है । मुनियों को देख कर बालक के मन में अपूर्व प्रसन्नता थी कि आज

उसका पुरुषार्थ सफल हुआ है। वह ममता के स्थान को छोडकर समता के स्थान में आ गया है

आचार्य सिंहगिरि ने बालक के लिए 'वज्र' शब्द का प्रयोग किया था अत: उस दिन से बालक का नामकरण ही 'वज्र' हो गया। बालक के लालन-पालन का उत्तरदायित्व साध्वियो के नेश्राय मे शय्यातर को दिया गया। शय्यातर महिलाओ ने अत्यन्त स्नेह से वज्र का लालन-पालन प्रारम्भ किया। वज्र का अधिकांश समय साध्वियों के उपाश्रय मे ही व्यतीत होता था। साध्वियाँ जो स्वाध्याय करती उसे वह तन्मय होकर सुनता, उस समय उसे नीद भी नही सताती थी। वज्र मे प्रतिभा गजब की थी। उसने ग्यारह अगो को सुनकर स्मरण कर लिया था किन्तु कही पर भी ज्ञान को छलकने नही दिया।

साध्वियो के नेश्राय मे बालक वज्र बड़ा हो रहा था। जब कभी सुनन्दा साध्वियों के उपाश्रय मे जाती तो बालक वज्र को देखकर उसका मातृस्नेह उमड़ पड़ता। वह बालक वज्र को गोद मे लेती, उसे दुग्धपान कराती। रंग-बिरंगे खेल-खिलौने लाकर उसे अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करती। अपनी भूल उसे रह-रहकर कांटे की तरह खलती, पर बाण हाथ से छूट चुका था। उसने साध्वियों से पुन: अपने पुत्र

को वापिस देने के लिए प्रार्थना की, पर साध्वियों ने स्पष्ट रूप से कहा—यह बालक आचार्य की धरोहर है, हमारा देने का तनिक मात्र भी अधिकार नही है।

बालक वज्र को देखकर सुनन्दा उसे लेने के लिए अकुला उठती थी। उसने उसके लिए बहुत सारे प्रयत्न किये, पर सफल न हो सकी। वह पुत्र को पाने के लिए अधीर हो रही थी।

एक बार पुनः आचार्य तुम्बवन पधारे। मुनि धनगिरि के समक्ष सुनन्दा ने अपने अन्तर्मन की व्यथा कही। बालक वज्र की माँग की। मुनि धनगिरि ने कहा—सज्जन कही हुई बात से मुकरते नही है। तुमने मुझे सदा के लिए इसे दिया है और इस सत्य के लिए साक्षी भी प्रस्तुत है। अब तुम्हारा कुमार पर कोई अधिकार नही है, यह तो हमारे साथ रहेगा और जैन शासन की महान् प्रभावना करेगा।

सुनन्दा ने अपनी बात संघ के समक्ष रखी। संघ ने भी उसे समझाया पर उसका मातृस्नेह अधिक से अधिक उमड़ता ही गया। उसने राजा को अपनी बात कही। उसे पूर्ण आशा थी कि राजा अवश्य ही न्याय करेगा। राजा ने सम्मान के साथ संघ सहित सन्तो को निमंत्रित किया। राजा के सामने दाहिनी ओर आचार्य सिंहगिरि आदि बैठे और बाईं ओर पारिवा-

रिक जनों के साथ सुनन्दा बैठी। सुनन्दा ने कहा—परिस्थिति के कारण मैंने कुमार को सौंपा था यह सत्य है, पर मातृ-हृदय इतना निष्ठुर नही है जो पुत्र को दुत्कार दे, यह मेरा हृदय है। इसे मुझे पुनः सौंपना चाहिए।

आचार्य ने कहा—कुमार वज्र पर उसकी माता सुनन्दा का कोई अधिकार नही है। वह अपने सम्पूर्ण अधिकार मुनि धनगिरि को दे चुकी है, अव पुनः अधिकारो का प्रत्यावर्तन नही हो सकता। इस पर अव आचार्य और सघ का ही अधिकार है।

राजा असमजस मे पड गया। न्याय का पलडा आचार्य व संघ की ओर था और करुणा माता की ओर उमड रही थी। न्याय और करुणा का यह विचित्र द्वन्द्व था। राजा को सहज ही एक उपाय सूझा। उसने कहा—वालक वीच मे बैठे, एक ओर माता रहेगी और दूसरी ओर पिता। दोनों ही अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करे, वालक अपने स्वेच्छा से जिधर जायेगा उस पर उसका अधिकार होगा।

यह सुनते ही सुनन्दा की वाँछे खिल उठी। उसने उसी क्षण प्रस्ताव रखा कि पुत्र को प्रथम आकर्षित करने का अधिकार मेरा है, अतः इस अधिकार से मुझे वचित न रखा जाये।

राजा व आचार्य ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार

कर लिया। सुनन्दा ने सोचा, अब विजय मेरे हाथ मे है। उसने सुस्वादु पदार्थ, खेल-खिलौने उसकी ओर बढ़ाये। प्यार से उसे पुकारा, आओ बेटे! मैं कभी से पलक-पाँवडे बिछाये बैठी हूँ, शीघ्र ही आओ।

बालक ने एक बार उधर देखा तो सुनन्दा को विश्वास हो गया कि बालक अब मेरी ओर लपक कर आ जायेगा। किन्तु दूसरे ही क्षण वज्र ने अपनी दृष्टि उधर से हटा ली और ध्यानस्थ होकर बैठ गया। सुनन्दा की कमनीय कल्पनाओ का महल ढह गया। उसने बहुत ही प्रयास किये किन्तु वज्र को अपनी ओर आकर्षित न कर सकी। वज्र जानता था कि मैं यदि माता की ओर आकर्षित हुआ तो मेरा ही नही अपितु माता का भी अहित होगा। यदि मैं आचार्य की ओर आकर्षित हुआ तो मेरा और माता दोनों का ही कल्याण है।

राजा ने दूसरा अवसर मुनि धनगिरि को दिया और कहा कि अब आप बालक को अपनी ओर आकर्षित करे। मुनि धनगिरि ने कहा—वज्र! यदि तू कर्म रूपी रज का परिमार्जन करना चाहता है तो रजोहरण ग्रहण कर, त्याग मार्ग को स्वीकार करने के लिए आगे बढ़।

वज्र बालक होने पर भी हलुकर्मी था। धनगिरि के आह्वान को सुनते ही वह प्रसन्नता से झूमता

हुआ पिता के पास आया और रजोहरण आदि धर्मोपकरण ग्रहण कर लिये। संघ ने जय-जयकार के नारों से भू-मण्डल को गूँजा दिया। राजा ने प्रसन्न होकर आचार्य आदि का हृदय से स्वागत किया। अभी भी बालक वज्र की अवस्था बहुत ही छोटी थी अतः ज्ञानाभ्यास के लिए साध्वियो की देख-रेख मे शय्यातर के पास छोड दिया गया।

पुत्र की अपने प्रति भयकर उपेक्षा देखकर सुनन्दा का जीवन ही सूना-सूना हो गया। वह सोचने लगी—मेरा प्यारा भाई, साधु बन गया, मेरे पति ने भी गृहस्थाश्रम को सदा के लिए छोड़ दिया, मेरे पुत्र ने भी सदा के लिए मुझे त्याग दिया है और मैं संसार के मोह मे फँसी हुई हूँ, क्या मैं आसक्ति के जाल को नही तोड सकती, धिक्कार है मुझे। मुझे इसी क्षण भाई और पति व पुत्र के त्यागमार्ग का अनुसरण करना चाहिए। उसने आचार्य सिंहगिरि के चरणों मे निवेदन किया। आचार्यश्री ने उसे दीक्षा प्रदान की और वज्र जब आठ वर्ष का हो गया तब उसे भी विधिवत् दीक्षा प्रदान की।

एक बार आचार्य सिंहगिरि ने अवन्ती की ओर प्रस्थान किया। वज्रमुनि भी साथ थे। यकायक आकाश में उमड-घुमड कर घनघोर घटाएँ आईं और वे हजार-

हजार धाराओ के रूप में बरस पड़ी। कल-कल छल-छल कर नदी नाले बहने लगे। आचार्य के आदेश से सभी सन्त सन्निकट की किसी गुफा में ठहर गये। वर्षा लम्बे समय तक चलती रही। भयानक जंगल था। मुनियो के उपवास चलते रहे। वज्र मुनि बालक थे पर वे क्षुधा से आकुल-व्याकुल न हुए। सदा ध्यान-स्वाध्याय में तल्लीन रहते थे। मुनि वज्र के पूर्वभव के एक मित्र देव ने वज्र मुनि की परीक्षा लेने के विचार से सार्थवाह का रूप बनाया और आर्य सिंहगिरि के पास पहुँचा। उस देव ने अपनी दिव्य शक्ति से वर्षा रोक दी थी। उसने आचार्य प्रवर से निवेदन किया—भगवन्! म आगे जा रहा था, यहाँ पर भोजन के लिए रुका। आपश्री को यहाँ देखकर मुझे अत्यन्त आह्लाद हुआ। आप कृपा कर मुझे आहारदान का लाभ प्रदान करे।

आचार्यश्री ने मुनि वज्र को आहार के लिए प्रेषित किया। मुनि वज्र सार्थवाह के साथ चलने लगे। देव ने मुनि वज्र की परीक्षा हेतु बारीक-बारीक बूँदें गिराना प्रारम्भ किया। मुनि वज्र वही वृक्ष के नीचे रुक गये। जब बूँदे बन्द हुई तो वे पुनः आगे बढे, सार्थवाह के वहाँ पर पहुँचे। वहाँ के निराले ठाट-बाट को देखकर मुनि वज्र के मन मे आशका हुई कि यह सार्थवाह मनुष्य नही होना चाहिए। अपने अनुभवों के आधार पर उन्होने अपनी पैनी दृष्टि से देखा कि

उसके नेत्र अनिमेष हैं। पैर पृथ्वी को स्पर्श नही कर रहे हैं। उन्होने प्रसन्न वदन सार्थवाह को कहा—मै आपका आहार ग्रहण नही कर सकता क्योकि देवपिण्ड श्रमणो के लिए अकल्प्य होता है।

देव ने प्रकट होकर मुनि के चरणो मे सिर झुकाया। उसने बहुत ही प्रसन्न होकर मुनि वज्र को 'वैक्रिय विद्या' समर्पित की। दूसरी बार पुनः उसी देव ने मुनि वज्र की परीक्षा ली। उसने मुनि वज्र को बढिया घेवर बहराने का प्रयास किया। मुनि वज्र की सूक्ष्मग्राहिणी प्रतिभा ने जान लिया कि यह देवमाया है। उन्होने घेवर नही लिये। वज्र मुनि की कठोर चर्या मे देव अत्यधिक प्रभावित हुआ। उसने वज्र मुनि को आकाशगामिनी विद्या प्रदान की। विद्या के दिव्य प्रभाव से वे मानुषोत्तर पर्वत तक बिना किसी भी रुकावट के जा सकते थे।

मुनि वज्र की अवस्था लघु थी, पर वे पढने मे उदासीन थे। रत्नाधिक मुनि सोचते कि यह क्रिया मे तो बहुत ही कुशल है, पर ज्ञानाराधना मे कमजोर है। वे उसे सतत प्रेरणा देते किन्तु वे उसे ध्यानपूर्वक सुन लेते। अन्य मुनियो को यह लगता कि इसकी ज्ञान के प्रति उपेक्षा है पर सत्य तथ्य यह था कि उन्होने साध्वियो से स्वाध्याय सुनकर ग्यारह अग कठस्थ कर लिये थे।

एक दिन आचार्य सिंहगिरि शौचभूमि के लिए बाहर पधारे हुए थे और कुछ श्रमण भिक्षा के लिए गये हुए थे। उपाश्रय में वज्र मुनि अकेले थे। वे प्रति दिन आचार्य को वाचना देते हुए देखा करते थे। उनके अन्तर्मानस मे यह विचार उद्‌बुद्ध हुआ कि मैं भी आचार्य की भाँति वाचना दूँ। पर वाचना किसे दूँ? कोई भी साधु उपाश्रय में नही था। उन्होने सन्तो के उपकरणों को एकत्र किया और अच्छी तरह उन्हे सामने रखकर स्वय बीच में बैठकर उच्चस्वर सेवाचना देनी प्रारम्भ की। अंग सूत्रों के गम्भीर रहस्यो को वे प्रकट कर रहे थे। उन्हे समय का ध्यान नही रहा। आचार्यश्री शौचभूमि से लौट आये। उपाश्रय के पास पहुँचते ही उन्होने वाचना के स्वर सुने। विचार किया सम्भव है भिक्षा से लौटकर साधु स्वाध्याय कर रहे है, पर और अधिक सन्निकट आने पर ज्ञात हुआ कि यह स्वर तो वज्र का है। कुछ क्षण रुककर उन्होंने सुना तो चकित हो गये, अरे! इसने इतना ज्ञान कहाँ से प्राप्त किया। प्रतिभासम्पन्न बालक मुनि जिस गच्छ में हो, वह गच्छ वस्तुतः भाग्यशाली है। वज्र मुनि के मन में किसी भी प्रकार का क्षोभ न हो अतः उच्च-स्वर से 'निस्सही' शब्द का उच्चारण किया। मुनि वज्र सँभल गये, सभी उपकरण यथावस्थित रखकर वे आचार्य के स्वागत के लिए प्रस्तुत हो गये।

आचार्य सिहगिरि ने सोचा–वज्र भले ही अवस्था में छोटा है किन्तु इसकी योग्यता महान है, कही अन्य सन्त इसकी अवज्ञा न करे। इसकी योग्यता का अन्य सन्तों को भी पता लगे इस दृष्टि से आचार्य ने सन्तो को एकत्र कर कहा—हम कुछ दिनो तक आस-पास के क्षत्रों मे विचरण करेंगे। छोटे-छोटे ग्राम है अतः कुछ सन्त हमारे साथ रहेगे और शेष सन्त यही पर रहेगे। हम पुनः शीघ्र ही लौट आयेगे।

योग-वाहक श्रमणो ने आचार्य प्रवर से निवेदन किया—भगवन्! हमे वाचना कौन देगा?

आचार्यदेव ने कहा—मेरी दृष्टि से इस कार्य के लिए वज्र सर्वथा उपयुक्त है।

जब आचार्यश्री ने वज्र की ओर सकेत किया तो मुनि मण्डल आश्चर्यचकित हो गया, पर अत्यन्त विनीत होने से किसी ने भी प्रतिवाद नही किया। आचार्यश्री ने विहार कर दिया।

वाचना का समय हुआ। सन्तो ने मुनि वज्र से कहा। मुनि वज्र ने वाचना प्रारम्भ की। वे प्रत्येक गाथा को बहुत ही सुगम व्याख्या करते गये। सभी सन्त वज्र मुनि की व्याख्या पद्धति से अत्यधिक प्रभावित हुए। कुछ श्रमणो ने पूर्व अधीत अध्ययनो के अर्थ भी पूछे और वज्र मुनि ने उनका स्पष्ट उत्तर देकर उन्हे

सन्तुष्ट किया। सन्त सोचने लगे कि आचार्यश्री थोड़े समय के बाद ही पधारें तो अच्छा है क्योंकि समयाभाव से आचार्य वाचना पूर्ण नहीं दे पाते है किन्तु वज्र मुनि से वही वाचना हमे एक प्रहर में प्राप्त हो जाती है।

कुछ समय के पश्चात् आचार्यश्री पुनः पधारे। उन्होने शिष्यो से वाचना के सम्बन्ध मे पूछा। सभ सन्तो ने एक स्वर से कहा—गुरुदेव! वज्र मुनि क वाचना देने का तरीका बहुत ही सुन्दर है। हमारी यह हार्दिक इच्छा है कि हमारे वाचना-प्रमुख वज्र मुनि हो

आचार्यश्री ने कहा—मै वज्र मुनि के ज्ञान वे म्बन्ध मे जानता था, पर आप लोग अपरिचित थे आपको परिचय कराने हेतु ही मैने यहाँ से विहार किय था वज्र को जो, ज्ञान प्राप्त है वह केवल श्रवण से हुअ है। वह अदत्त श्रुत है अतः अब मैं इसे व्यवस्थित रूप से श्रुत का ज्ञान दूँगा और कुछ ही समय मे आचार्य श्री ने वज्र मुनि को जितना भी पूर्वो का ज्ञान उन्हे था वह उसे सिखा दिया और विशेष पूर्वों का अध्ययन करने के लिए उज्जैन में विराजित आचार्य भद्रगुप्त के पास उन्हे भेजा। आचार्य भद्रगुप्त दश पूर्व के ज्ञाता थे। वज्र मुनि के आने के पूर्व ही प्रातः उन्होने स्वप्न देखा कि मेरा एक पात्र दूध से छलछला कर भरा हुआ है और कोई अतिथि आया है। वह उसे पूरा पी गया है। आचार्य ने चिन्तन कर कहा—ज्ञात होता है कि कोई

नया साधु आयेगा और मेरे दश पूर्व के ज्ञान को सम्पूर्ण रूप से ग्रहण कर लेगा। मैं चिन्तित था कि कोई भी मेरे ज्ञान को ग्रहण नही कर रहा है पर जैन शासन मे ऐसा एक रत्न अवश्य है जो मेरे ज्ञान को ग्रहण करेगा।

प्रातः होने पर वज्र मुनि मंथर गति से चलते हुए उपाश्रय में प्रविष्ट हुए। वज्र मुनि को देखते ही आचार्य भद्रगुप्त को अनुभव हुआ कि मैंने इसी व्यक्ति को स्वप्न मे देखा था। वन्दन कर उन्होने अपने आने का कारण निवेदन किया। आचार्य भद्रगुप्त बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होने ज्ञानदान प्रारम्भ किया। वज्र मुनि की प्रतिभा अत्यन्त तीक्ष्ण थी। कुछ ही दिनों में उन्होंने दश पूर्वो का अध्ययन कर लिया। पुनः वे आचार्य भद्रगुप्त की आज्ञा से आचार्य सिंहगिरि की सेवा मे दशपुर पहुँचे। सर्वत्र प्रसन्नता का वातावरण था। आचार्य सिंहगिरि की वृद्धावस्था हो गई थी अतः उन्होने संघ का उत्तरदायित्व मुनि वज्र को सौप दिया और स्वयं ने अनशन कर समाधिमरण प्राप्त किया।

वज्र मुनि बहुत ही प्रभावक आचार्य थे। उनकी आज्ञा मे पांच सौ साधु थे। उनकी अद्भुत विलक्षण प्रतिभा से सारा सघ प्रभावित था। उनका रूप सौन्दर्य भी अनूठा था।

पाटलीपुत्र मे धन नामक एक श्रेष्ठी था। उसकी पुत्री का नाम रुक्मणी था, जो रूप में देवागना के समान थी। एक बार वज्र मुनि की साध्वियाँ धनश्रेष्ठी की वाहनशाला मे ठहरी हुई थी। रुक्मणी साध्वियों के पास जाती और विविध विषयों पर चर्चाएँ चलाती। एक दिन सहज रूप से वज्र मुनि के सम्बन्ध में चर्चा चली, साध्वियों ने वज्र मुनि के अद्भुत रूप लावण्य और ज्ञान का परिचय दिया। रुक्मणी वज्र मुनि पर अनुरक्त हो गई। उसने अपने हृदय की वात साध्वियो से कही। साध्वियों ने उसे समझाते हुए कहा—मुनियों के साथ केवल साधना का सम्बन्ध होता है, वासना का नही। तुम्हारे मन मे जो गलत विचार पैदा हुआ है उसे मन से निकाल दो। रुक्मणी ने अपने मन की वात पिता से कही कि 'आचार्य वज्र ही मेरे पति होगे। यदि वे मुझे स्वीकार नही करेंगे तो मैं भी संयम ग्रहण कर लूँगी।' श्रेष्ठी ने भी उसे समझाया पर वह न मानी।

एक बार आचार्य वज्र विहार करते हुए पाटलीपुत्र पधारे। राजा सहित पौरजन आचार्य वज्र के दर्शनार्थ पहुँचे। उनके पावन प्रवचन को सुनकर वे वहुत ही प्रभावित हुए। जन-जन की जिह्वा पर एक ही वात थी कि आचार्यश्री का ज्ञान जितना महान है उतना ही रूप भी अद्भुत है। यह मणि-कांचन सयोग वहुत ही

कम मिलता है। रुक्मणी ने सुना तो उसके हर्ष का पार न रहा। उसने पिता को सूचित किया। धनश्रेष्ठी एक करोड की रत्नराशि, रुक्मणी और उसकी दासियो को लेकर आचार्यश्री की सेवा मे पहुँचा। रुक्मणी के मन की बात स्पष्ट शब्दों मे आचार्यश्री से निवेदन की। कचन और कामिनी का आकर्षण आचार्यश्री को कैसे हो सकता था। आचार्य श्री के त्याग-वैराग्य से छल-छलाते हुए उपदेश को सुनकर रुक्मणी ने प्रव्रज्या ग्रहण की और अनेकों व्यक्तियो ने जैनधर्म को स्वीकार किया।

आचार्य वज्र का श्रुतज्ञान बहुत ही निर्मल था। उन्हे अनेक लब्धियाँ प्राप्त थी। कहा जाता है आचाराग सूत्र के महापरिज्ञा नामक अध्ययन से पदानुसारी लब्धि के आधार से उन्होने गगन-गामिनी विद्या का उद्धार किया था। किन्तु भविष्य मे होने वाले श्रमणो की अल्प प्रज्ञा और अल्प सत्व को दृष्टि में रखकर उन्होने वह विद्या किसी भी साधु को प्रदान नही की।

था कि कोई भी घर का द्वार खुला नही रखता था। यदि कोई भोजन सामग्री लेकर जाता तो भिखमंगे उससे रास्ते में ही छीन लेते थे । एक दिन संघ ने आचार्य से निवेदन किया कि आपके जैसे महान् शक्तिशाली आचार्य के रहते हमें यह कष्ट उठाना पड़े यह कहाँ तक उचित है । आपश्री कोई न कोई उपाय करे ।

संघ की प्रार्थना को सन्मान देकर आचार्य ने एक पट को फैलाया और उस पर सघ को बैठने के लिए कहा । सघ के बैठ जाने पर आचार्यश्री बीच में बैठे, विद्या के बल से उस पट को आकाश में उड़ाया और सीधे ही दक्षिणापथ मे जगन्नाथ पुरी पहुँचे, क्यों कि उस समय वहाँ पर सुकाल था। सम्पूर्ण संघ आनन्द के साथ वहाँ पर रहने लगा । उस समय जगन्नाथ पुरी में बौद्धो का अधिक प्रभाव था । शास्त्रार्थ होने लगे किन्तु जैनाचार्यो के समक्ष बौद्धाचार्य सदा पराजित होते रहे ।

आचार्य वज्र विचरते हुए एक वार दक्षिणापथ पधारे । वहाँ उन्हे श्लेष्म की व्याधि हो गई । व्याधि के निवारणार्थ उन्होने सौठ का सेवन प्रारम्भ किया। सौठ का एक नन्हा सा टुकड़ा उन्होने कान पर रख लिया और वे स्वाध्याय में लीन हो गये। समय बीत गया और उसका प्रयोग करना वे विस्मृत हो

गये। सायं प्रतिक्रमण की आज्ञा लेते समय वह टुकड़ा नीचे गिरा। उसे देखते ही आचार्य चिन्तन करने लगे कि अब मेरी स्मृति क्षीण होती चली जा रही है। यह तो आयु-समाप्ति का लक्षण है अतः मुझे समाधिपूर्वक अनशन कर देह का परित्याग करना चाहिए।

आचार्य वज्र ने उपयोग लगाकर देखा कि बारह वर्ष का भयंकर दुर्भिक्ष होने वाला है। यह दुर्भिक्ष पहले से भी अधिक भयंकर होगा। ऐसी स्थिति मे संघ छिन्न-भिन्न हो जायेगा, अतः अभी से सजगता से काम लेना चाहिए। आचार्य ने अपने प्रमुख शिष्य वज्रसेन मुनि से कहा—तुम संघ की रक्षा के लिए श्रमण-समुदाय को लेकर अन्यत्र विहार करो, मैं सन्निकट के पर्वत पर अनशन कर समाधिमरण प्राप्त करूँगा।"

मुनि वज्रसेन सघ को लेकर प्रस्थित हुए। किन्तु दुर्भिक्ष का सर्वत्र साम्राज्य था। मुनि आहार आदि के अभाव मे भूखे रहने लगे। मुनि वज्रसेन ने कहा—मैं इस प्रकार संघ को भूख से छटपटाते हुए नही देख सकता। संघ के लिए मैं लब्धि से आहार प्राप्त करूँगा। अपवाद विधि से आहार प्राप्त करना होगा।

पांच सौ मुनियों ने आचार्य वज्रसेन से निवेदन किया—भगवन्! अपवाद विधि से प्राप्त सदोष आहार हम सेवन करना नही चाहते। हम आचार्य वज्र स्वामी

के श्रीचरणो में पहुँच कर अनशन कर समाधिपूर्वक आयु पूर्ण करेगे। वे सभी आचार्य वज्र की सेवा मे पहुँचे और उत्कृष्ट भावना से अनशन किया, और समाधिपूर्वक आयु पूर्ण किया। अनशन के समय एक प्रत्यनिका देवी ने दही आदि लाकर अनुकूल उपसर्ग दिया पर आचार्यश्री और अन्य कोई भी सन्त उस उपसर्ग से विचलित नही हुए।

आचार्य वज्र के पास ही आर्यरक्षित ने साढ़े नौ पूर्वो का अध्ययन किया था। आचार्य वज्र के प्रमुख शिष्य वज्रसेन थे। आचार्य वज्र के नाम से ही श्रमणो की एक शाखा 'वज्र' के नाम से विश्रुत हुई। वज्र स्वामी की विहार स्थली मुख्य रूप से मालवा, मगध और कलिग प्रदेश रही है। कोंकण प्रदेश मे भी उन्होने विहार किया था।

विक्रम संवत् २६ में वज्रस्वामी का जन्म हुआ। ३४ में दीक्षा हुई, ७१ में वे आचार्य पद पर आसीन हुए और ११४ में उनका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य वज्र जैन जगत के एक महान ज्योतिर्धर आचार्य थे। उनकी स्मृति सदा जन जीवन में बनी रहेगी।

☆

४

आचार्य शमित

आभीर देश मे अचलपुर नगर था जो अत्यन्त सुन्दर था। उसके सन्निकट कन्ना और पूर्णा नामक दो नदियाँ थी और उन दोनो नदियो के बीच में ब्रह्म द्वीप नामक एक छोटा सा द्वीप था। उस द्वीप में तापसो का एक आश्रम था जिसमे पाँच सौ तापस रहते थे। तापसो का प्रमुख नदी के जल पर इस तरह से चलता था जैसे स्थल पर चल रहा हो। किञ्चित् मात्र भी जल का स्पर्श न होने से सारी जनता आश्चर्य-चकित थी। चमत्कार को नमस्कार की उक्ति के अनुसार हजारों लोग अपने धर्म को छोड़कर तापसो के भक्त बनने लगे। हजारो जैन परिवारों ने तापस धर्म को स्वीकार किया। तापसो के मन मे जैनधर्म के प्रति घृणा की भावना थी और वह समय-समय पर उपहास के रूप मे व्यक्त होती थी। जिससे जैन समाज मे गहरी निराशा व्याप्त हो गई थी।

आर्य शमित विहार करते हुए वहाँ पर पधारे। समझदार श्रावको ने आचार्य प्रवर से निवेदन किया

कि भगवन् ! यहाँ जैन समाज अत्यन्त विकट स्थिति में गुजर रहा है, यदि यही स्थिति रही तो कुछ ही दिनों में यहाँ पर जैन समाज पूर्णरूप से नष्ट हो जायेगा। हमें आशा है आप जैसे योगनिष्ठ प्रतिभासम्पन्न आचार्य हमें इस संकट से मुक्त कर सकते है।

आचार्य ने कुछ समय तक चिन्तन कर श्रावक सघ के अध्यक्ष को उपाय बता दिया। आचार्यश्री की बात सुनते ही अध्यक्ष की आँखों मे नई चमक आ गई।

अध्यक्ष महोदय ने तापस प्रमुख के पास जाकर कृत्रिम श्रद्धा व्यक्त करते हुए निवेदन किया—भगवन्! संसार में धर्म तो बहुत देखे है किन्तु आपके समान चमत्कार किसी मे भी नही देखा। लगता है यह योग की महान् उपलब्धि है। आप जैसे महान् सिद्ध पुरुष को देखकर मेरा सिर श्रद्धा से नत है।

तापस जैन सघ के अध्यक्ष के मुँह से अपनी प्रशंसा सुनकर फूला न समाया। उसका चेहरा फूल की तरह खिल उठा। सघ प्रमुख ने कहा—तपस्वी श्रेष्ठ ! क्या आप जैसे सिद्ध पुरुषो को भिक्षा प्रदान करने का मुझे सुअवसर मिल सकता है, यदि यह अनमोल लाभ मुझे मिल जाय तो मैं आपका शिष्य बन जाऊँ।

तापस प्रमुख ने मुस्कराते हुए कहा—आप जैन समाज के प्रमुख है। आपके प्रेम भरे आग्रह को मैं कैसे टाल सकता हूँ। सन्त तो भक्ति के भूखे होते हैं।

भगवन् ! यह सुनहरा अवसर मुझे कल ही प्राप्त हो जाये तो अच्छा है। क्योकि शुभ कार्य मे विलम्ब अपेक्षित नही है। सघ प्रमुख ने निवेदन किया।

तापसप्रमुख ने उसकी भक्ति की मुक्तकंठ से प्रशसा करते हुए सहर्ष स्वीकृति प्रदान की।

दूसरे दिन तापसप्रमुख अन्य शताधिक तापसो के साथ ठीक समय पर जैन सघ के प्रमुख के वहाँ पर पहुँचा। सघ प्रमुख ने पहले से ही एक विशाल भव्य मण्डप बना रखा था और बीच मे उच्चस्थान पर एक स्वर्ण सिहासन भी रखा था। शहर के सहस्राधिक सभ्रान्त नागरिक उपस्थित थे। जयजयकारों के नारो से गगन मण्डल गूंज उठा। तापसप्रमुख स्वर्ण सिहासन पर आसीन हुआ। सघ प्रमुख ने भक्ति से विभोर होकर अपने ही हाथो से तापसप्रमुख के चरणो का प्रक्षालन प्रारम्भ किया। तापसप्रमुख चरण प्रक्षालन के लिये इन्कार होता रहा, पर सघ प्रमुख मल-मलकर के अच्छी तरह से धोने लगा। प्रच्छन्न रूप से तापसप्रमुख की पादुकाये भी धो दी गई। जनता श्रावकप्रमुख की भक्ति को देखकर चकित थी; यह जैन सघ का नायक भी देखो तापसो का कितना भक्त बन गया है।

सघप्रमुख ने अपने हाथों से सभी तापसों को

भोजन कराया। बढ़िया स्वादिष्ट सरस पकवानों को खाकर सभी तापस हर्ष-विभोर थे किन्तु तापसप्रमुख की हवाइयाँ उड़ गई। उसके हृदय की धडकन बढ गई। वह-मन-ही मन में घबरा रहा था कि अब कुछ ही समय में मेरी कलई खुल जायेगी। वह भोजन कर रहा था पर उसका मन उसमें नही था। वह सोच रहा था कि मैं इसके चंगुल में बुरा फँस गया। उसे विचार आया कोई बात नहीं, पादुकाओं के सहारे ही मैं नदी को पार कर जाऊंगा। उसे यह पता नही था कि पादुकाओ का भी अच्छी तरह से प्रक्षालन हो गया है।

भोजन से निवृत्त होकर तापसप्रमुख तापसो के साथ आश्रम की ओर प्रस्थित हुआ। सघप्रमुख और हजारो लोग पीछे जय-जयकार के नारे लगाते हुए चल रहे थे। शौच निवृत्ति के लिए आचार्य शमित भी नदी किनारे पहले ही पहुँच चुके थे। प्रतिदिन की तरह तापसप्रमुख ने जल पर स्थल की तरह चलने के लिए कदम बढ़ाया कि वह जल पर चल न सका किन्तु पानी में डूबने लगा। लोग देखकर चकित थे कि योग की सिद्धि आज कहाँ गायब हो गई। जनता तरह-तरह की बाते बनाने लगी। तापसप्रमुख उन बातो को सुनकर के भी कोई उत्तर न दे सका। आज वह जैन संघ के प्रमुख द्वारा छला गया था। संघप्रमुख ने

उच्च स्वर से रहस्योद्घाटन करते हुए कहा—तापस-प्रमुख जो प्रतिदिन जल पर स्थल की भाँति चलते थे वह कोई योग की सिद्धि नही थी और न कोई तप का ही प्रभाव था। यह एक रासायनिक प्रयोग था। जडी-बूटियो का लेप ये अपने पैरों के तलो में लगाते थे, आज वह चरण प्रक्षालन से साफ होगया है अतः ये डूब रहे है, इन्हे बचाओ।

रहस्योद्घाटन होते ही जनमानस विक्षुब्ध हो उठा। सभी कहने लगे—अरे, यह तो महान पाखण्डी है, मायाचार से हम को ठगता था। इसमे धर्म का क्या सम्बन्ध है ?

आर्य शमित आगे बढे। उन्होने नदी को सम्बोधित करते हुए कहा—हे नदी! मै उस पार जाना चाहता हूँ. मेरी आध्यात्मिक साधना व तप मे प्रभाव है तो मुझे मार्ग दो।

आर्य शमित के कहते ही विस्तृत क्षेत्र मे वेग से बहती हुई नदी एकदम सकुचित हो गई और आर्य शमित उसे लांघकर दूसरे किनारे पहुँच गये। आर्यशमित के आध्यात्मिक साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार को देखकर जनता आश्चर्यचकित हो गई। आर्य शमित और जैन-धर्म की जय-जयकार के गगनभेदी नारे गूंज उठे।

तापसप्रमुख अपने पांच सौ शिष्यो के साथ आर्य

शमित के चरणो मे उपस्थित हुआ । आर्य शमित ने धर्म के मर्म को प्रकट किया । उसे सुनकर पाँच सौ तापसो के साथ तापसप्रमुख ने जैनेन्द्री दीक्षा ग्रहण की । तापस ब्रह्मद्वीप मे रहते थे अतः उनकी शाखा जैन परम्परा मे 'ब्रह्मद्वीपक' के रूप मे विश्रुत हुई ।[1]

एक बार आर्य शमित हरन्त सन्निवेश मे पधारे । वहाँ पर जिनदत्त नामक श्रावक श्रमणो का परम भक्त था किन्तु उसकी भक्ति मे धीरे-धीरे मोह मिल गया और वह श्रमणो के लिए विशेष रूप से आहार बनाने लगा । आर्य शमित को ज्ञात होने पर उन्होंने उसे ग्रहण नही किया और अपने शिष्यो को भी उस अकल्पनीय - हार को न लेने का आदेश दिया ।

आर्य शमित ने वर्षो तक जैन धर्मकी प्रभावना की और अनेकों को आर्हती दीक्षाएँ प्रदान कर अन्त में वे समाधिपूर्वक आयु पूर्ण कर स्वर्गस्थ हुए । ✡

---

१ (क) आवश्यक चूर्णि, पूर्वभाग पृ० ५१४-१५
(ख) निशीथसूत्र भाष्य गा० ४४४८-५०
(ग) निशीथ चूर्णि भाग ४, पृ० ८७४-७५
(घ) जीतकल्प भाष्य गा० १४६३, पृ० १३२
(ङ) कल्पसूत्र किरणावली टीका पृ० १७

५

आचार्य पादलिप्तसूरि

जिस समय अयोध्या मे विजय ब्रह्म का राज्य था, उस समय वहाँ पर फुल्ल नामक एक श्रेष्ठी रहता था। उसकी धर्मपत्नी का नाम प्रतिभा था। उसके कोई भी सन्तान न थी। उसे स्वप्न मे ऐसा आभास हुआ कि महान लब्धिधारी आर्य नागहस्ती के चरणोदक का पान करने से उसकी आशा फलवती होगी। प्रातः वह आर्य नागहस्ती के दर्शनार्थ पहुँची, ज्यो ही वह उपाश्रय मे प्रविष्ट होने लगी त्यो ही एक साधु हाथ मे पात्र लेकर पानी परठने के लिए आ रहा था। प्रतिभा ने पूछा—भगवन् ! क्या ले जा रहे है ? उसने कहा—आचार्य प्रवर अभी-अभी बाहर मे पधारे है, उनके चरणो का प्रक्षालन किया था, वह जल परठने जा रहा हूँ।

प्रतिभा ने भक्ति भाव से विभोर होकर कहा—भगवन् ! यह जल मुझे मिल जाय तो जन्मभर आपका उपकार न भूलूँगी।

मुनि ने पात्र नीचे रख दिया। उसने वह पानी लेकर पी लिया, और आर्य नागहस्ती को नमन करने के उनके पास पहुँची। आचार्यदेव ने कहा—तेंने मेरे से दश हाथ दूर रहकर जलपान किया है जिसके कारण तेरा प्रथम पुत्र तेरे से दश योजन दूर रहकर बडा होगा। दूसरी बात दश हाथ दूर रहने से तेरे दश पुत्र होगे, जो सभी प्रतिभावान होंगे।

प्रतिभा ने जब दश पुत्र की बात सुनी तो उसका हृदय हर्ष से नाच उठा। उसने निवेदन किया भगवन्! मेरा प्रथम पुत्र मेरे से दश योजन दूर रहेगा, इससे तो यही श्रेयस्कर है कि वह आपश्री के सान्निध्य मे रहकर जिन शासन की शोभा में अभिवृद्धि करे।

आचार्य नागहस्ती ने कहा—वस्तुतः तेरा प्रथम पुत्र जिनशासन को चार चाँद लगाने वाला होगा।

प्रतिभा के पुत्र हुआ। उसने प्रथम पुत्र को आचार्य के चरणो मे समर्पित किया। आचार्य ने लालन-पालन के लिए उसे पुनः प्रतिभा को सौप दिया और उस बालक का नाम 'नागेन्द्र' रखा।

आठ वर्ष की उम्र मे नागेन्द्र आर्य नागहस्ती की सेवा मे पहुँचा। दीक्षाग्रहण की। आर्य नागहस्ती ने मुनि नागेन्द्र की शिक्षा का दायित्व मण्डन गणी को सौंपा। मुनि नागेन्द्र की प्रतिभा तीक्ष्ण थी जिससे वे शीघ्र ही

न्याय, व्याकरण, साहित्य और आगम में निष्णात हो गये।

एक दिन मुनि नागेन्द्र को आर्य नागहस्ती ने किसी गृहस्थ के वहाँ से कांजी का पानी लाने भेजा और वे पानी ले आये, आचार्य ने पानी लाने के सम्बन्ध में पूछा तो उन्होने एक गाथा कही—

अंवं तबच्छीए,
अपुप्फियं पुप्फदंतपंतीओ।
नवसालिकंजियं,
नवबहूइ कुडएण मे दिन्न ॥

लाल वस्त्रो को धारण करने वाली और अपुष्पित (अरजस्वला) पुष्पदत पंक्ति वाली नववधू ने बडे ही प्रमोद से मुझे नये चावलो की कांजी का पानी वहराया।

विद्या जो पैरों पर लेप करने से सिद्ध होती है। यह बात सुनकर आर्य नागहस्ती अत्यधिक प्रसन्न हुए और वह विद्या उन्हें प्रदान कर दी।

जब नागेन्द्र मुनि दश वर्ष के हुए, उनका ज्ञान अनुभव, इतना प्रौढ था कि आर्य नागहस्ती ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने पर नागेन्द्र मुनि का नाम पादलिप्त सूरि रखा गया।

एक बार आचार्य पादलिप्तसूरि पाटलीपुत्र पधारे। पाटलीपुत्र के राजा मुरण्ड पादलिप्त सूरि की अत्यधिक प्रशसा सुन रखी थी अतः उसने नानाविध रूप से उनकी परीक्षाएं की। सभी परीक्षाओं मे वे समुत्तीर्ण हुए। एक बार एक व्यक्ति ने राजा मुरण्ड को एक गेंद समर्पित करते हुए कहा–राजन्! आप इस गेद पर लगाये हुए धागे का छोर बताने का अनुग्रह करे।

राजा मुरण्ड ने बहुत ही प्रयास किया पर उसका छोर हाथ न लगा। अन्त मे उसने वह गेद आचार्य पादलिप्त के समक्ष उपस्थित की। आचार्यश्री ने उसी समय गर्मागर्म पानी मँगवाया और गेंद को कुछ क्षणो के लिए उसमें छोड़ दिया। गेद पर लगा हुआ मोम पिघल कर पथक् होगया और छोर का पता लग

गया । राजा आचार्यश्री की प्रतिभा से चमत्कृत हुआ।

एक दिन राजा मुरण्ड ने एक लकडी पादलिप्त सूरि के पास भेजी, और आचार्यश्री से पुछवाया कि इसका मूल और अनुभाग किधर है, कृपया बताएँ।

आचार्यश्री ने लकड़ी को पानी मे छोडा। मूल भाग भारी होने से वह पानी में डूबा रहा और दूसरा छोर हलका होने से ऊपर हो गया। आचार्यश्री ने उस पर चिह्न लगा कर राजा के पास भिजवा दिया।

इस प्रकार राजा मुरण्ड ने अनेक परीक्षाएँ ली और सभी मे आचार्यश्री की प्रतिभा को देखकर वह चमत्कृत हुआ। राजा के सिर मे एक बार छः महीने तक भयकर वेदना रही किन्तु आचार्यश्री के मागलिक से वह शान्त हो गई।

एक दिन आचार्यश्री से राजा ने पूछा—भगवन्! हमारे अधिकारी वेतन लेने पर भी प्रामाणिकता से कार्य नही करते है और आपके शिष्य बिना वेतन लिए हुए भी प्रामाणिकता से कार्य किस प्रकार कर सकते है?

राजन्! आपके अधिकारियो मे अर्थ प्रधान भावना है तो हमारे शिष्यों मे परमार्थ की भावना है और उससे वे आँख मूद करके भी आज्ञा का पूर्ण पालन करते है।

रही थी कि वे इस मूर्ख आचार्य से क्यों मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करना चाहते है ? वह इसी उधेड-बुन मे अपने गुरु नागार्जुन के पास पहुँचा और उस प्रस्रवण पात्र को देते हुए कहा—लीजिए यह अमूल्य उपहार प्रस्रवण को देखते ही नागार्जुन क्रोध से आगबबूला हो उठा। उसने उसे काच के बर्तन को सामने की चट्टान पर फेक दिया, किन्तु यह देखकर हैरान हो गया कि वह सारी चट्टान सोने के रूप में चमकने लगी। नागार्जुन का सिर श्रद्धा से नत हो गया। अरे जिस महापुरुष के मल-मूत्र में यह शक्ति है उस स्वयं में कितनी शक्ति होगी। मैं जिस रस के पीछे दीवाना बनकर भटकता रहा वह रस आचार्य के सामने कुछ भी नही है। कहाँ मेरु और कहाँ राई का दाना ?

वह सीधा ही आचार्य पादलिप्त के पास पहुँचा। "भगवन् ! मै अपने को महान् समझ रहा था और आपको छोटा; पर आपकी महान् साधना से मेरा गर्व नष्ट हो गया है। वह आचार्य के चरणो मे रहने लगा। एक दिन आचार्य पादलिप्त ने पैरों मे लेप किया और आकाश मे उड़कर अपने इच्छित स्थान पर पहुँचे। जब आचार्यश्री लौटकर आये तो नागार्जुन ने उनके चरणो का प्रक्षालन किया और प्रक्षालित जल को एकान्त मे ले जाकर उसकी सुगन्ध, स्वाद और स्पर्श आदि से १०७ औषधियो का पता लगाया। जिस

अद्भुत लेप को जानने के लिए वह वर्षो से छटपटा रहा था उसे जानकर उसका मन मयूर नाच उठा। नागार्जुन ने भी वह लेप तैयार किया। उसे आकाश मे उडने की उतावल थी, अपने पैरो मे लेप लगाया, कुछ ऊँचाई तक उडा और धडाम से नीचे आ गिरा। उसके हाथ-पैर जख्मी हो गये।

आचार्य पादलिप्त ने जब देखा तो बोले—बिना गुरुगम के क्या कभी किसी को गुर मिला है, तू बिना गुरुगम के पाद लेप सिद्ध करना चाहता है इसीलिए जख्मी हो गया है।

नागार्जुन लज्जित था, उसने कहा—गुरुदेव ! भूल हो गई। मुझे पता है कि बिना गुरु के कभी सिद्धि नही मिलती। मैंने आपश्री के पाद लेप का अपनी बुद्धि से पता लगाया है वे एक सौ सात औषधियाँ है।

आचार्यश्री ने कहा—मै तुम्हारी तीक्ष्ण प्रतिभा से प्रभावित हूँ। तुमने चरण प्रक्षालन से इन औषधियो को जान लिया है, इसमे अपूर्णता यही है कि इन औषधियो को भावित करने के लिए तूने जल का उपयोग किया है जब कि इन औषधियो को कांजी और चावलों के निर्मल पानी मे घोटकर पैरो पर लेप करना चाहिए, ऐसा करने से किसी भी प्रकार की अपूर्णता नही रहेगी।

आचार्य के संकेत से वह लेपकर आकाश गरुड़ की तरह उड़ने लगा। उसकी वर्षो की सा पूर्ण हुई।

एक बार प्रतिष्ठानपुर के राजा सातवाहन आचार्य पादलिप्त को अपने नगर में पधारने का नि न्त्रण दिया। आचार्यश्री पधारे और उद्यान में विराजे कवि बृहस्पति को जब यह ज्ञात हुआ कि आचार्य प्र आये है तो उसने उनकी परीक्षा लेने के लिए चाँदी प्याले में तरल घृत भर कर आचार्य के पास भेजा आचार्य ने उसका रहस्य समझकर धारणी विद्या कुछ सुइयाँ उसमें खडी कर दी और आगन्तुक के हा ही उसे लौटा दिया। वृहस्पति समझ गया कि आचा श्री विशेष दक्ष है। वृहस्पति का तात्पर्य था कि य नगरी विद्वानों से भरी पडी है। आचार्य ने उत्तर दि कि मैं उन सभी विद्वानो की प्रतिभा का भेदन करने समर्थ हूँ।

राजा सातवाहन को जब यह घटना परिज्ञा हुई तो उसे अपार प्रसन्नता हुई। आचार्य पादलि राजसभा में आते, शास्त्रार्थ कर विद्वानो को अप विद्वत्ता से चकित करते थे। उनकी प्रतिभा से स प्रभावित थे। एक बार आचार्य पादलिप्त राजसभा 'तरंगलोला' कथा का वाचन कर रहे थे, कवि

शक्ति पर सभी मंत्रमुग्ध थे, सभी के मुँह से आचार्य की प्रशस्ति मुखर हो रही थी। कवि पाञ्चाल को आचार्यश्री की प्रशस्ति सहन नही हुई। उसने भरी सभा में आक्षेप करते हुए कहा—राजन्! यह कथा नही कथा है। यह इनकी मौलिक रचना नही है, मेरे ग्रन्थों के भाव, भाषा और शैली को चुराकर ये अपने आपको विद्वान सिद्ध कर रहे है।

आचार्यश्री कटु आलोचना करने पर भी चुप रहे। दो चार दिन के पश्चात् ही लोगो ने सुना कि आचार्यश्री स्वर्गस्थ हो गये। सर्वत्र हाहाकार मच गया। शिविका मे आचार्यश्री के मृत देह को सजाकर शोभा यात्रा जा रही थी। मार्ग मे कवि पाचाल का घर आया। आचार्यश्री के शव को देखकर वह फूट-फूट कर रोने लगा—धिक्कार है मुझे ऐसे महापुरुष के साथ ही मैने दुष्टतापूर्ण व्यवहार किया। तरंगलोला के लिए मैंने मिथ्या आरोप लगाया। यह मेरी नही, इसी महापुरुष की मौलिक रचना थी। क्या मुझ अधम को यह महान आत्मा क्षमा करेगी।

कवि पाचाल की आंखो से आंसू बरस रहे थे। पाप के प्रक्षालन स्वरूप उसके हृत्तन्त्री के तार झनझना रहे थे जिसके मुख रूपी निर्झर से तरंगलोला (तरंग-वती) नामक नदी प्रादुर्भूत हुई, इस पादलिप्त

हरण करते समय यम की ही कपाल क्रिया क्यो न हो गई ।[१]

हजारो लोग यह दृश्य देख कर चकित थे, सहसा शिविका मे से आचार्य पादलिप्त खड़े हुए और जनता को आह्वान कर बोले—'कवि पाञ्चाल की सत्य उक्ति ने मुझे जीवन दान दिया है ।' हर्ष से सारा वातावरण मुखरित हो उठा । आचार्यश्री मरे नही थे पर उन्होने सत्य तथ्य के उद्घाटन के लिए योग की क्रिया से ऐसा किया था । राजा और जनता के मन में कवि पाञ्चाल के प्रति घृणा को भावना उद्बुद्ध हुई पर आचार्य श्री ने उसे क्षमा कर अपने विराट् हृदय का परिचय दिया ।

तरगलोला (तरंगवती) आचार्यश्री की महत्त्वपूर्ण कृति थी, पर वह वर्तमान मे मूल रूप मे उपलब्ध नही है । आचार्य वीरभद्र के शिष्य नेमिचन्द्र ने प्राकृत भाषा मे उसका सक्षेप किया था जो आज भी उपलब्ध है । वहुत वर्षो पूर्व उसका यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद भी हो चुका है ।[२] आचार्यश्री की प्रश्न प्रकाश, ज्योतिष करण्डक आदि अन्य अनेक रचनाएँ हैं ।

---

१ सीस कहवि न फुट्टं जम्मस्स पालित्तय हरतस्स
जस्स मुहनिज्झराओ तरंगलोला नई वूढा ॥

२ श्री केवलमुनि ने "तरंगलोला" को 'राग-विराग' नाम से हिन्दी में प्रस्तुत की है ।

पादलिप्त सूरि ने वर्षों तक धर्म की प्रभावना की। जीवन के अन्तिम दिनो में सव कुछ त्याग कर वत्तीस दिन तक अनशन कर शत्रुंजय पर्वत पर उन्होंने समाधि मरण प्राप्त किया। उनके जीवन की हजारों विशेषताएँ इतिहास के पृष्ठो पर चमक रही हैं।

—प्रभावक चरित्र

—प्रबन्ध चिन्तामणि

—प्रबन्ध कोश

☆

६

आचार्य बप्पसूरि

वप्पसूरि एक जैन आचार्य थे। उनके तप-त्याग और संयम की कठोर चर्या की प्रशसा विरोधी से विरोधी व्यक्ति भी करता हुआ नही अघाता था। एक राजा ने सुना। उसने आचार्यश्री की परीक्षा करने का निश्चय किया।

रात्रि का शान्त वातावरण था। चारो ओर गहन अधकार का साम्राज्य था। हाथ से हाथ भी दिखाई नही दे रहा था। उस समय भोगी भोग मे निमज्जित थे तो योगी आत्म-साधना में तल्लीन थे।

उस भयकर अंधकार मे आचार्य वप्पभट्ट स्वाध्याय और ध्यान से निवृत्त होकर पट्ट पर सोये थे। मन में वैराग्य का उदधि उछाले मार रहा था, कहीं पर भी विकार और वासनाएँ न थी। उस समय राजा के आदेश से एक महान् सुन्दरी गणिका ने आचार्यश्री के उपाश्रय में प्रवेश किया और धीरे से अपने मख-मल जैसे मुलायम हाथों से शनैः-शनैः आचार्यश्री के पैर दबाने लगी। उसके कोमल स्पर्श से आचार्यश्री

अन्तर्मानस मे भक्ति की भागीरथी का अजस्र स्रोत प्रवाहित हो गया। उनकी नीद खुल गई और अतीत की सुनहरी स्मृतियाँ मानस-पटल पर चमकने लगी। उनकी आंखों में आंसू आ गये वे सिसकियाँ भरने लगे।

आचार्यश्री को एक बालक की तरह रोते देखकर गणिका ने कहा—भगवन्! आप रोये नही और न सिसकियाँ ही भरे किन्तु जरा आँखें खोलकर मेरे अद्भुत रूप को देखे। मेरा तन-मन आपश्री के चरणों में न्योछावर है।

आचार्यश्री ने सुमधुर आवाज को सुनकर आँखें खोली। पर अपने आसन पर गणिका को देखकर चकित हो गये। वे एकदम उठ बैठे। कहीं नीचे न गिर जाय अतः गणिका ने अपने बाहुपाश मे उन्हे जकड लिया।

आचार्यश्री ने कडक कर कहा—जरा दूर बैठो, आसन को छोडकर।

किसलिए भगवन्! क्या मेरा कोमल स्पर्श आपको नही सुहाता है? मैं तो आपके चरणों मे समर्पित हूँ।

आचार्यश्री ने आंखो से आंसू बहाते हुए कहा—तुम्हारा स्पर्श अच्छा **भी लगता है** और नहीं भी लगता है।

आचार्यश्री ने अपने आँसू पौछते हुए कहा—तेरे कोमल स्पर्श से मुझे अतीत की स्मृति हो आई। जिस प्रेम भरे भावो से तुम मेरे पैर दबा रही थी, उसी तरह मैं भी श्रद्धा और भक्ति से विभोर अपने सद्‌गुरुदेव के पैर दबाता था। तुम्हारी तरह ही गुरुदेवश्री का शरीर कोमल था। तुम्हारे स्पर्श से मुझे गुरुदेव की स्मृति आ गई। वह दिन धन्य था जिस दिन गुरु-चरणो मे बैठकर मैं सेवा करता था। आज गुरुदेव नही हैं। उनके स्वर्ग-वास हुए कई वर्ष व्यतीत हो गये। मैं अपने महान् गुरुदेव का चरणस्पर्श कब कर पाऊँगा।" आचार्य की आँखो से आँसू टपक रहे थे—गुरुदेव आप कहाँ हो, जल्दी दर्शन दो।

आचार्यश्री के निर्मल हृदय ने गणिका के दिल को परिवर्तित कर दिया। उसने अपने अपराध की क्षमा याचना करते हुए कहा—गुरुदेव ! मैं आपको पहचान नही सकी। मैंने राजा के आदेश से आपका अविनय किया है, आपको कष्ट दिया है। आप तो वैराग्य की साक्षात्मूर्ति है। आपश्री के दर्शन कर मै धन्य हो उठी।

भक्ति से आचार्यदेव को नमस्कार कर वह अपने निवास स्थान पर लौट आई। आचार्य के त्याग और वैराग्य से छलछलाते हुए जीवन का दर्शन करके उसने स्वयं को धन्य माना।

७

आर्य कालक

प्रातःकाल का सुहावना समय था। ठुमक-ठुमककर पवन चल रहा था। आज उज्जयिनी निवासी अत्यन्त प्रसन्न थे। क्योकि ज्योतिर्धर जैनाचार्य आर्य कालक नगर के बाहर उपवन मे पधारे थे। बरसाती नदी की तरह जनता उनके दर्शन के लिए उमड़ रही थी। उज्जयिनी मे अवस्थिता सतीवृन्द ने सुना, वे भी आचार्य प्रवर के दर्शन हेतु प्रस्थित हुईं। श्रमणियो के साथ आर्य कालक की लघु बहिन महासती सरस्वती भी थी जिनका रूप अनूप था। वह नीची दृष्टि किये हुए अन्य श्रमणियो के साथ-साथ चल रही थी।

उस समय उज्जयिनी का राजा गर्दभिल्ल था। उसका असली नाम क्या था यह पता नही। उसने शत्रुओ पर विजय प्राप्त करने हेतु गर्दभी विद्या सिद्ध की थी और उस विद्या के कारण अपने आपको वह अपराजित सम्राट समझता था। न्याय-नीति को विस्मृत होकर अनीतिपूर्ण आचरण करने में भी वह नही चूकता था।

साध्वियाँ राजपथ पर बढ रही थीं। गर्दभिल्ल ने राजमहल के गवाक्ष से उन्हें जाते हुए देखा। साध्वी सरस्वती के अनुपम रूप को देखकर वह कामान्ध हो उठा। उसने अपने विश्वस्त अनुचरो को बुलाकर कहा—शीघ्र ही जाकर उन साध्वियो को राजमहल में बुला लाओ।

राजा के अनुचरों के द्वारा भावभीनी प्रार्थना करने से साध्वियाँ राजमहल मे पहुँची। पूर्व सकेतानुसार महासती सरस्वती को अन्दर के प्रकोष्ठ मे ले गये और अन्य साध्वियों को अनुचरों ने कहा—अब आप सभी पधार सकती हैं। साध्वियों ने कहा–हमारी साध्वी को अन्दर ले गये हो और हमें जाने के लिए कहते हो? यह कितना अनुचित है? पर राजाज्ञा के कारण अनुचरों ने एक भी बात नही सुनी। उन्होंने अन्य सभी ध्व को राजभवन से बाहर निकाल दिया।

साध्वी सरस्वती को राजा गर्दभिल्ल के सामने उपस्थित किया गया। साध्वी को देखते ही राजा अपने आसन से उठा, स्वागत करते हुए कहा—आइये, इस आसन पर बैठिये। साध्वी सरस्वती ने कहा—राजन्! हम सर्वप्रथम गृहस्थ के आसन पर नहीं बैठती। विशेष कारण के अतिरिक्त गृहस्थ के घर भी नही बैठती। फिर मेरी अन्य साध्वियाँ पीछे रह गई है। मै एकाकी हूँ। इसलिए बैठने का प्रश्न ही उपस्थित नही होता। कहिए, किस कारण से आपने हमको बुलाया है।

गर्दभिल्ल ने कहा—जिस कार्य के लिए पुरुष स्त्री को चाहता है उसी कार्य के लिए आपको यहाँ बुलाया है।

सरस्वती—मैं आपका तात्पर्य नही समझ पायी।

गर्दभिल्ल—आपकी युवावस्था, गुलाव के फूल की तरह खिलता हुआ चेहरा, अनुपम लावण्य और कमल-सी-कोमलता को देखकर आप पर कौन मुग्ध नही होगा ? मैं आपके रूप-अमृत का पान करना चाहता हूँ। इसीलिए आपको कष्ट दिया। अव तो आप मेरी वात समझ गईं न ?

सरस्वती—आप राजा है। क्षत्रिय-पुत्र है, जो दूसरों की रक्षा करता है। क्या, आपको इस प्रकार पापपूर्ण विचार करते हुए भी लज्जा का अनुभव नही होता ? अन्य साधारण महिला के सम्वन्ध मे सोचना भी जहाँ ठीक नही है, वहाँ एक साध्वी के सम्वन्ध मे ऐसा सोचना तो विलकुल ही अनुचित है। पाप ही नही, महान् पाप है।

गर्दभिल्ल—सवसे वडा पाप मेरी दृष्टि मे किसी के हृदय को ठेस पहुँचाना है। मैं आपसे प्रेम की भीख मांग रहा हूँ और उसे आप ठुकरा रही हैं। क्या, यह महान् पाप नही है ? मेरी दृष्टि से मैं नही; आप स्वयं महापाप कर रही हैं। देखिए, यह युवावस्था इन

प्रकार दर-दर भटकने के लिए नही है। और न कष्ट उठाने के लिए ही है। जीवन को रसमय बनाने के लिए है, अतः मै आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप राजमहल में रहकर खूब ही आनन्द क्रीड़ा करे और मेरे मन को प्रसन्न करे।

सरस्वती—राजन्! लगता है तुम्हारा हृदय पापपूर्ण है। हृदय का पाप ही तुम्हारी जवान पर आकर वोल रहा है। हम ऐसी बात सुनना भी पाप समझती है। अतः आज्ञा दे, मै यहाँ से जाना चाहती हूँ। एक क्षण भी रुकना मुझे पसन्द नहीं है।

गर्दभिल्लस व्यंग्य हँसी हंसते हुए बोला–सरस्वती! अव कहाँ जाओगी ? तुम राजमहल को छोड़कर जा नही सकती। तुम बन्दी बन चुकी हो। अतः श्रमणी वेष का परित्याग कर मेरे साथ आनन्द क्रीडा करो। तुम्हें मेरी इच्छा पूरी करनी ही होगी।

सरस्वती—अरे दुष्ट ! तू राजा है या अधम है ? तुझे इस प्रकार बाते करते हुए लज्जा भी नही आती ? मै जैन साध्वी हूँ। हँसते हुए प्राणों का त्याग कर सकती हूँ, पर अपने धर्म का परित्याग नही कर सकती।

गर्दभिल्ल ने अपने अनुचरों को आदेश दिया कि सरस्वती कही भाग न जाय इसका पूर्ण ध्यान

रखना। साध्वी सरस्वती के चारो ओर परिचारिकाओ का पहरा लग गया।

राजमहल के बाहर खडी हुई 'साध्वियां महासती सरस्वती की प्रतीक्षा करती रही। तीन प्रहर व्यतीत हो गये, पर सरस्वती नही लौटी तो साध्वियो ने यह दु:खद समाचार आचार्य कालक को पहुँचाया।

यह घोर अनाचारपूर्ण समाचार सुनते ही आचार्य कालक का खून खौल उठा। वे सीधे ही राजा गर्दभिल्ल के पास पहुँचे और उसे समझाते हुए कहा—राजन् ! किसी साध्वी को इस प्रकार अपहरण करना, उसे बन्दी बनाना, नीति के विरुद्ध है। आप राजा है। इसलिए ऐसा कार्य करना आपके लिए शोभास्पद नही है। अत. मै आपसे कहता हूँ इसी क्षण साध्वी सरस्वती को छोड दीजिए।

गर्दभिल्ल—क्या राजा की आज्ञा पालन करना आप लोगों का कर्तव्य नही है ? मै कहता हूँ कि आप राजाज्ञा का पालन करे।

आचार्य—राजन् ! तुम्हारी आज्ञा अनीति पर आधारित है जो सर्वथा अनुचित है। सन्त या सतीगण तुम्हारी साधारण प्रजा नही है जो तुम्हारी अनुचित आज्ञा का पालन करे।

गर्दभिल्ल—आचार्य ! आपको यह ज्ञात है न, कि

प्रत्येक श्रेष्ठ वस्तु पर राजा का अधिकार होता है उसी दृष्टि से मैं सरस्वती के साथ व्यवहार करन चाहता हूँ और मेरी इच्छा पूर्ण होकर रहेगी।

आचार्य—राजन् ! साध्वी के साथ इस प्रकार का व्यवहार करना सर्वथा अनुचित है। अभी भी तुम समझ जाओ। नही तो इसका कटु फल तुम्हे भोगना पड़ेगा।

गर्दभिल्ल ने अपने अनुचरों को आदेश दिया कि इस साधु को गर्दन पकड़कर बाहर निकाल दो। राजा के अनुचर ज्यों ही आचार्य कालक को पकड़ने के लिए आगे बढ़े त्यो ही आचार्य कालक को राजा के इस अनुचित व्यवहार पर, इसके अनैतिक निकृष्ट कृत्य पर क्रोध आ गया। उन्होने राजसभा मे ही भीषण प्रतिज्ञा करते हुए कहा—दुष्ट गर्दभिल्ल ! याद रखना ! मैं तुझे एक दिन राज्यच्युत कर दूँगा। और वे उसी क्रोध के आवेश में राजसभा से बाहर निकल गये।

जब आचार्य कालक का क्रोध शान्त हुआ तो उन्होने सोचा कि मेरी प्रतिज्ञा से गर्दभिल्ल कही सतर्क न हो जाय। क्रोध में कही सरस्वती का अहित न कर दे। अतः वे जानबूझ कर कुछ दिनो तक विक्षिप्त अवस्था मे उज्जयिनी के राजपथों पर घूमते रहे। जब

राजा को और उज्जयिनी के निवासियो को यह विश्वास हो गया कि आर्य कालक पागल हो गये हैं, तव वे चुपचाप वहाँ से रवाना होकर भरोच पहुँचे।

उस समय भरोच मे आचार्य कालक के भानजे वलमित्र का राज्य था और उसका लघुभ्राता भानुमित्र वहाँ का युवराज था। आचार्य ने दोनों को राजा गर्दभिल्ल की नीचता का वर्णन करते हुए कहा—इस प्रकार उस दुष्ट राजा ने सरस्वती साध्वी का अपहरण किया है। दोनो भाई युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गये। किन्तु आचार्य ने कहा—तुम्हारी सैन्य-शक्ति से उसकी सैन्य शक्ति अधिक है। अतः इस समय आक्रमण करना उचित नही है।

आचार्य वहाँ से पारिसकुल शक शासक के पास पहुँचे और वहाँ के शक शासक को अपने निमित्त और ज्योतिष-शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान से चमत्कृत किया और उसे अपना भक्त बनाया। शक शासक को ससैन्य तैयार किया और अपने भानजे वलमित्र-भानुमित्र को भी। दोनों की सेना विना पूर्व सूचना दिये उज्जयिनी की ओर प्रवल वेग के साथ बढी।

राजा गर्दभिल्ल को अपनी गर्दभी ... अभिमान था। किसी भी शत्रु के आ... पाते ही राजा गर्दभिल्ल एक गर्दभी

स्थान पर शत्रु सेना की ओर अभिमुख कर स्थापित करता और स्वय तीन दिन के तप की साधना करता। तीन दिन के तप की साधना पूर्ण होते ही उस गर्दभी का मुँह खुल जाता और वह बहुत ही जोर से रेंकने लगती। शत्रुसेना का जो भी सैनिक, हाथी, घोड़ा आदि उस स्वर को सुनते वे तत्काल ही मुँह से रक्त उगलते हुए मूर्छित होकर जमीन पर गिर पडते। उस गर्दभी विद्या के बल पर राजा अपने आपको अपराजेय समझता था। आर्य कालक गर्दभी विद्या के सभी गुप्त रहस्यों को जानते थे। वे उसके प्रभाव और परिणामो से भी परिचित थे। अत: उन्होने १०८ ऐसे महान् धनुर्धरो को ऐसे गुप्त स्थानो पर छिपाकर रख दिया जहाँ से वे गर्दभी के मुख को भेद सके। ज्यो ही गर्दभी ने मुँह खोला त्यो ही एक साथ १०८ बाण गर्दभी के मुँह मे प्रवेश कर गये। गर्दभी का मुँह बाणों से भर गया जिससे वह रेंकने मे असमर्थ हो गयी। फलस्वरूप गर्दभिल्ल की गर्दभी विद्या का प्रभाव नष्ट हो गया।

दोनो ओर से भीषण युद्ध हुआ। उज्जयिनी की सेना युद्ध के लिए पूर्व तैयार नही थी। अतः वह बुरी तरह परास्त हो गई। शकराजा, बलमित्र और भानुमित्र की विराट सेना उज्जयिनी के दुर्ग मे प्रविष्ट

ई और राजा गर्दभिल्ल को वन्दी वनाया तथा साध्वी सरस्वती को उसके चगुल से मुक्त किया।

आर्य कालक तथा सतीसाध्वी सरस्वती ने पुनः प्रव्रज्या ग्रहण कर अपने जीवन को विशुद्ध वनाया। युद्ध आदि मे जो हिंसा हुई थी उसके प्रायश्चित्त रूप मे आचार्य ने पुनः सयम लेकर शुद्धि की।

एक वार आचार्य कालक उज्जयिनी से भड़ोच पधारे। वडा भाई वलमित्र राजा था और भानुमित्र युवराज था। वे आचार्य के प्रवचन परिषद मे उपस्थित होते। उनकी वहिन भानुश्री का पुत्र वलभानु वहुत ही सरल व साधु प्रकृति का था। वह आचार्यश्री के पावन प्रवचनो से अत्यन्त प्रभावित हुआ। आचार्यश्री का वर्षावास भी उस वर्ष वही था। एक दिन वलभानु ने आचार्य प्रवर से निवेदन किया कि मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ। आचार्यश्री ने उसे समझाते हुए कहा—वत्स, अभी तुम युवक हो श्रमणधर्म को ग्रहण करना तलवार की धार पर चलने के समान कठिन है।

वलभानु—आचार्य प्रवर, मैं ससार से विरक्त हो चुका हूँ। मेरे अन्तर्मानस मे वैराग्य भावना अगडाइयाँ ले रही है। मैने गम्भीर चिन्तन के पश्चात् ही दीक्षा-ग्रहण करने का निश्चय किया है।

आचार्य—वत्स ! तुम्हारी वैराग्य भावना देखकर

मेरा मन अत्यधिक आह्लादित है, पर अभिभाव की अनुमति लेना बहुत ही आवश्यक है। विना अनुम के हम दीक्षा नही दे सकते।

युवक बलभानु आचार्यश्री की प्रबल प्रेरणा उत्प्रेरित होकर अपनी माँ के पास पहुँचा। माँ से उसने अनुनय-विनय किया कि मुझे दीक्षा की अनुमति दे दो। पर माँ ने बहुत प्रयास करने पर भी दीक्षा की अनुमति नही दी। बलभानु निराश होकर आचार्य के पास पहुँचा। उसकी उत्कट भावना देखकर अन्त मे आचार्य श्री ने उसे दीक्षा प्रदान की।

बलभानु की माँ ने अपने दोनो भ्राता बलमित्र और भानुमित्र को भड़काया।[1] वे आचार्यश्री पर रुष्ट

---

१ बलमित्र और भानुमित्र ये दोनो आचार्य कालक के प्रति परम श्रद्धालु थे। पर उनका पुरोहित ब्राह्मण होने से आचार्य से द्वेष भाव रखता था। एक दिन वह आचार्य से शास्त्रार्थ मे पराजित हो गया जिससे उसकी क्रोधाग्नि भडक उठी, वह यह उपाय सोचने लगा कि किसी तरह से आचार्य यहाँ से प्रस्थित हो जायँ। एक दिन उसने बलमित्र और भानुमित्र को कहा—आचार्य महान् तपस्वी और पुण्यात्मा है। वे जिधर भी चलते है उधर सामान्य व्यक्तियो को नही चलना चाहिए- क्योकि उनकी आशा-

गये । अतः आचार्यश्री को वर्षावास मे ही वहाँ से
स्थान करना पड़ा । और वे भडौच से प्रतिष्ठानपुर
हुँचे ।

प्रतिष्ठानपुर का राजा सातवाहन जैनधर्म का
नुयायी था । आचार्य प्रवर के आगमन के समाचारो
ो जानकर उसे महती प्रसन्नता हुई । प्रतिष्ठानपुर मे
हले ही सन्त ठहरे हुए थे। उन्होंने तथा राजा और
ौरजनो ने आचार्यश्री का भाव-भीना स्वागत किया ।
ाचार्य ने कहा—भाद्रशुक्ला पचमी के दिन सामूहिक रूप
पर्यूषण पर्व की आराधना करनी है । सभी ने आचार्य
वर के आदेश को शिरोधार्य किया । आचार्य के चरणो
सातवाहन ने नम्र निवेदन करते हुए कहा—भग-
न् ! स्थानीय लोक परम्परा की दृष्टि से पंचमी के
दन इन्द्र महोत्सव मनाया जाता है और उस महोत्सव
मुझे सम्मिलित होना आवश्यक होता है । अतः पंचमी
दिन मैं पर्वाराधन नही कर सकता । मेरी श्री-

तना होती है जिससे राज्यविग्रह हो सकता है। राज्य-
हित के लिए उन्हे विदा कर दे । बलमित्र और भानुमित्र
को पुरोहित की बात जँच गई और उन्होंने आचार्य
कालक को वर्षाकाल मे ही विहार करने के लिए उत्प्रे-
रित किया ।

चरणो में नम्र प्रार्थना है कि पर्वाराधना पचमी को कर षष्ठी को की जाय।

आचार्य कालक ने कहा—पर्व तिथि का अतिक्रम नही हो सकता।

राजा ने पुन. निवेदन किया—यदि एक दिन पू चतुर्थी को पर्वाराधन करने मे कोई आपत्ति न ह तो वैसा ही आपश्री करे।

आचार्यश्री ने राजा सातवाहन के लिए अपवा रूप में इसकी स्वीकृति प्रदान की।[१]

एक वार आचार्य कालक अपनी विशाल शि मडली के साथ उज्जयिनी मे विराज रहे थे। तन से वृद्ध हो चुके थे, किन्तु उनके मन मे अपार स्फूर्ति थी वे अपने शिष्यों को आगम वाचना देते, किन्तु आचा श्री ने देखा कि शिष्यों मे आगम वाचना के प्रति रु नहीं है। जो विनय, भक्ति गुरु के प्रति होनी चाहि उसका भी उनमें अभाव है। अपने शिष्यो को सन्मा पर लाने हेतु आचार्य चिन्तन करने लगे कि मै इन बीच रहा, तो भी कोई लाभ नहीं है। इस प्रकार म मे प्रतिदिन सक्लेश होने से तो कर्मबन्धन होगा। अ

---

१ कारणिया चउत्थी अज्ज कालगायरिएण पवत्तिया।

— निशीथ चूर्णि उ० १०, भा० ३, पृष्ठ १३

मुझे यहां से एकाकी ही चल देना चाहिए। पर एकाकी कहां जाना?—इस पर चिन्तन करते हुए उन्हे स्मरण आया कि उनका प्रशिष्य आर्य सागर है जिसने आज दिन तक मुझे देखा नही है। वह इस समय स्वर्णभूमि मे विचरण कर रहा है। जो आगम साहित्य का मर्मज्ञ विद्वान् है, उसी के पास जाना उपयुक्त है।

आर्य कालक ने शय्यातर को एकान्त मे बुलाकर कहा कि शिष्यगण आगम वाचना के प्रति उपेक्षित है। उनमें जो विनय और विवेक चाहिए उसकी भी कमी है। अतः मैं यहां से स्वर्णभूमि की ओर जा रहा हूं। पर मेरे शिष्यो को यह बात सहज रूप से मत कहना। जब वे अत्यधिक आग्रह करे और उन्हे अपने कृत्य पर पश्चात्ताप हो तब उन्हे यह रहस्य बता देना।

शय्यातर को यह निर्देश देकर आचार्य अपने शिष्यो को बिना कुछ कहे स्वर्णभूमि की ओर चल दिये। आर्य सागर ने उन्हे साधारण साधु समझकर न उनका सत्कार किया और न उन्हे बहुमान ही दिया—आप यहां रहना चाहते है तो सहर्ष रह सकते है। आर्य कालक ने भी अपना परिचय नही दिया।

आगम वाचना के समय आर्य सागर ने कहा—हे वृद्ध महानुभाव! आगम वाचना को तुम सुनोगे?

आर्य कालक ने कहा—हां! मैं भी आपकी वाचना सुनना चाहता हूं।

आगम वाचना पूर्ण होने पर आर्य सागर ने पूछा—आगम की गम्भीर बातें कुछ समझ में भी आती है ?

आचार्य ने कहा—हाँ, कुछ समझता अवश्य हूं। वे गम्भीरतापूर्वक प्रतिदिन सुनते रहे।

इधर उज्जयिनी में आचार्य कालक के शिष्यों ने देखा कि गुरुदेव का कही पता नही है। वे इधर-उधर ढूँढने लगे। पर कही पता न लगा। उन्हे स्मरण आया—हमारे अविनयपूर्ण असद्व्यवहार से आचार्यश्री का अन्तर्मानस व्यथित हुआ है और वे हमें छोड़कर कही चले गये हैं। शिष्यों ने शय्यातर से पूछा—क्या आचार्यदेव ने जाते समय कुछ संकेत किया है ? वे कहां पधारे है ?

शय्यातर ने कहा—आप सभी की प्रवृत्ति से असंतुष्ट होकर आचार्यश्री को जाना पड़ा है। क्या आप लोगों को अपने कृत्यों पर पश्चात्ताप नही होता ? आगम वाचना के प्रति आप लोग कितने उपेक्षित हैं। गुरुजनो का किस प्रकार विनय करना चाहिए, उनकी भक्ति करनी चाहिए, यह भी आप लोगो को ध्यान नहीं है। ऐसी स्थिति में आप लोगों के बीच आचार्य रहकर क्या करते ? अतः वे यहां से प्रस्थित हो चुके है।

सभी शिष्य अपनी भूलो पर पश्चात्ताप करने लगे। उन्हे अपनी एक-एक भूल स्मरण आने लगी कि हमने आचार्यश्री को कितना कष्ट दिया है? अब हमे महान उपकारी गुरुदेव के दर्शन कब होगे। उनकी आंखो से आंसू टपक पडे।

शय्यातर ने कहा—पहले यह प्रतिज्ञा ग्रहण करो कि भूलो की पुनरावृत्ति नही होगी, तो मै तुम्हे आचार्य कालक जहां गये है उनका सही पता बता सकता हूं।

सभी शिष्यो ने एक स्वर से कहा—हम कभी भी आचार्य का अविनय नही करेंगे। हम उनके श्रीचरणो मे जाना चाहते है।

शय्यातर ने बताया—आर्य कालक स्वर्ण-भूमि मे पधारे है। आपको आर्य सागर के पास उनके दर्शन होगे।

शिष्यो का विराट समुदाय उज्जयिनी से स्वर्ण-भूमि की ओर प्रस्थित हुआ। मार्ग मे विराट सन्त समुदाय को देखकर लोग पूछते—आपके आचार्य कौन है? वे उत्तर देते—आर्य कालक।

आर्य सागर ने सुना तो सोचा—मेरे दादागुरु आगमो के मर्मज्ञ विद्वान् आर्य कालक अपने शिष्यो के साथ पधार रहे है। मुझे उनके सर्वप्रथम दर्शन होंगे

और मैं अपनी अनेक जिज्ञासाएँ उनके चरणो
रखूँगा। मेरे धन्य भाग्य है जो उनके दर्शन होंगे।

आर्य कालक का शिष्य समुदाय स्वर्णभूमि
पहुँचा। आचार्य सागर अपने शिष्यो के साथ आ
की अगवानी के लिए पहुँचे। आर्य कालक के शिष्यो
आर्य सागर से पूछा—क्या आर्य कालक आपके
पधार गये हैं ?

आर्य सागर ने कहा—आचार्य कालक तो
पधारे है। हाँ, कुछ दिन पूर्व एक नये वृद्ध सन्त अ
आये है।

आर्य कालक का शिष्य समुदाय जो उज्जयिनी
आया था, वह उपाश्रय पहुँचा। दूर से आर्य का
को देखकर उनके चरणों में गिर पड़ा और अपने अ
राध की क्षमायाचना की।

आर्य सागर तो लज्जा से जमीन में गडे जा
थे। "अरे, मैंने दादागुरु का कितना अपमान किया
उनसे वन्दन और नमस्कार करवाया है। मैं उच्चा
पर बैठा और उन्हे नीचे बैठाया।" उनके चरणो में
कर वे भी अपने अविनय की क्षमा-याचना करने ल
आगम-वाचना का समय होते ही आर्य सागर ने निवे
किया—भगवन् ! अब तो आप को ही आगम-वा

रनी है। पर भगवन् ! मै आगम-वाचना केसी करता
? अनुयोगो की वाचना स्पष्ट होती है या नही ?

आर्य कालक ने आर्य सागर के सिर पर हाथ
खते हुए कहा—वत्स ! भूल करके भी अभिमान मत
रो। अभिमान करना बुरा है।

आर्य कालक ने शिष्यो को समझाने हेतु एक
ट्ठी धूल हाथ मे ली। उसे एक स्थान पर रखा। उसी
ल को तीन स्थानो पर रखी। फिर प्रतिप्रश्न किया—
ागर, क्या समझे ?

आर्य सागर ने निवेदन किया-भगवन्! इस रहस्य
ा उद्घाटन आप ही करें।

आर्य कालक ने कहा—जैसे प्रथम स्थान पर
ल अधिक है, द्वितीय स्थान पर उससे कम है और
त्तरोत्तर वह कम होती जाती है, वैसे ही तीर्थंकर से
णधर, गणधर मे आचार्य, और उनकी परम्पराओ
आता हुआ ज्ञान कम होता चला गया है।

कितने ही अर्थ और पर्याय नष्ट हो चुके है
सकी कल्पना नही की जा सकती। अत. ज्ञान का गर्व
रना सर्वथा अनुचित है। आचार्य कालक के वचनो
आर्य सागर और उनका शिष्य समुदाय प्रतिबुद्ध
आ।

आर्य कालक एक ज्योतिर्धर तेजस्वी आचार्य थे उन्होने अपने जीवन मे जैनधर्म की अत्यधिक प्रभावना की ।

—निशीथ चूर्णी

—कहावली

—कालकाचार्य कथा

—बृहत्कल्पभाष्य

८

आचार्य खपुट

भडौच (भृगुकच्छ) का राजा वलमित्र बौद्ध धर्मावलम्बी था। बौद्ध आचार्य गेहेनर्दी से प्रभावित था और उन्हे वह अपना धर्मगुरु मानता था। एक दिन जैन आचार्य खपुट के शिष्य भुवन अनेक श्रावको के साथ राजा की सभा मे पहुँचे। राजा ने उनका उचित सत्कार किया और आने का कारण पूछा।

मुनि भुवन ने कहा—आपके गुरु गेहेनर्दी आपके द्वारा विशिष्ट सम्मान प्राप्त कर के जैन श्रमणो को पशु तुल्य समझते है। वे जैन श्रमणो के उपाश्रयो में घास की पूनियां डालते है। इस प्रकार अपने हृदय के द्वेष को प्रगट करते है जो सर्वथा ही अनुचित है।

राजा वलमित्र ने कहा—आपका यह कथन कि मैं बौद्ध धर्मावलम्बी हूँ और मेरी अनन्त श्रद्धा गुरु गेहेनर्दी के प्रति भी है, यह सत्य है। पर इस प्रकार कोई किसी का अपमान करे उसे भी मैं बरदाश्त नही कर

पर मुझे यह समझ में नहीं आया कि वे किस भावना से यह कार्य करते है।

मुनि भुवन—इसका कारण बहुत ही स्पष्ट है। आपके द्वारा अत्यधिक सम्मान प्राप्त करके उनके अन्तर्मानस में ज्ञान का अहंकार पैदा हो गया है जिससे वे अपने आपको महान् ज्ञानी और तर्कविद् समझते है और शेष बुद्धिमानों को वे बुद्धू भी समझते है।

बलमित्र—मुनिप्रवर ! आपका यह कथन भी सत्य है। वस्तुतः वे प्रकांड पडित है। धर्म रहस्य के ज्ञाता है। मै भी मानता हूँ कि उनके तर्क के सामने अन्य कोई भी व्यक्ति टिक नहीं सकता।

मुनि भुवन—राजन् ! सभी अपने घर मे पहलवान है, सभी अपने आपको महान् समझते है। किसके सिद्धान्त सत्य हैं और कौन तर्कविद्या में निष्णात है इसका सही निर्णय तभी हो सकता है जब परस्पर शास्त्रार्थ हो।

बलमित्र—जहाँ तक मैं समझता हूँ कोई भी व्यक्ति उनके सामने शास्त्रार्थ में टिक नही सकता।

मुनि भुवन—यह तो मिथ्या अहंकार है। जैसे कूप मण्डूक अपने आपको महान् समझता है, किन्तु जब वह बाहर निकलता है तो उसकी आँखे फटी रह जाती है। उसका मिथ्या-अहकार हवा लगते ही पेट्रोल की तरह उड जाता है।

वलमित्र—क्या आप मेरे गुरुजी से शास्त्रार्थ के लिए प्रस्तुत है ? यदि आप प्रस्तुत है तो मैं आचार्य प्रवर गेहेनर्दी को शास्त्रार्थ के लिए आमंत्रित करूँ ।

मुनि भुवन—यद्यपि जैन श्रमण वाद-विवाद को पसन्द नही करते क्योकि उसमे राग-द्वेष की सहज उत्पत्ति हो सकती है, पर सत्य और असत्य के निर्णय के हेतु वे सदा तत्पर रहते हैं और अपने अकाट्य तर्कों से विशद सत्य को जन-मानस के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए भी सदा तत्पर रहते है। और यह भी स्पष्ट है उनके सामने कोई भी टिक नही पाता ।

वलमित्र—आप दोनो के शास्त्रार्थ को सुनकर मुझे महान् लाभ होगा । सत्य क्या है, इसको मैं समझ सकूँगा ।

राजा वलमित्र ने उसी समय बौद्ध सघ के साथ गुरु गेहेनर्दी को राजसभा मे बुलाया। गुरु गेहेनर्दी ने शास्त्रार्थ प्रारम्भ किया। किन्तु मुनि भुवन के प्रवल तर्कों के सामने वे टिक नही सके और परास्त हो गये ।

मुनि भुवन के अकाट्य तर्कों से जब गेहेनर्दी परास्त हो गये, तो राजा वलमित्र के मन मे बौद्धधर्म के प्रति जो पूर्व श्रद्धा थी वह नही रही। बौद्ध संघ जो पहले उपद्रव कर रहा था और जैन संघ को

कर रहा था, वे उपद्रव शान्त हो गये। गेहेनर्दी के परास्त होने पर मुनि भुवन से शास्त्रार्थ करने हेतु गुड़शस्त्रपुर के प्रसिद्ध बौद्धाचार्य वुड्ढकर (बुद्धकर) को बुलाया। उनके साथ मुनि भुवन का पुन. शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। किन्तु मुनि भुवन के प्रबल तर्कों से वुड्ढकर भी पराजित हो गये। इस पराजय से वुड्ढकर को हार्दिक आघात लगा और उसी आघात से गुडशस्त्रपुर में आकर उन्होंने अनशन कर अपने जीवन का अन्त कर दिया। वे मरकर यक्ष रूप में उत्पन्न हुए। पूर्वभव के वैर को स्मरण कर उन्होंने जैनसघ पर उपद्रव करना प्रारम्भ कर दिया। गुडशस्त्रपुर के जैनसघ ने आचार्य खपुट को सूचना दी कि आप शीघ्र ही यहां पधारें और जैनसघ पर आये हुए उपद्रव को शान्त करें।

आचार्य खपुट गुडशस्त्रपुर चलने के लिए प्रस्तुत हुए। उन्होने मुनि भुवन को भड़ौच मे ही रहने का कहा। मुनि भुवन आर्य खपुट की भगिनी का ही पुत्र था अतः उस पर विश्वास कर एक कपर्दी (जंत्रिपट=यंत्रपट) देते हुए कहा—वत्स! इसे अपने पास सभाल कर रखना। पर इसे कभी खोलना मत।

आचार्य खपुट गुडशस्त्रपुर पहुँचे। वे यक्षायतन में ही ठहर गये। यक्ष की मूर्ति के कानों में उन्होंने एक

जूता बांध दिया। यक्षायतन के पुजारी ने राजा को जाकर प्रार्थना की कि राजन्! एक जैन श्रमण आये है। वे यक्षायतन मे ठहरे हैं और उन्होने यक्ष की प्रतिमा के कान मे एक जूता बांध दिया है।

राजा ने इसे यक्ष का अपमान समझा। उसने उसी समय आदेश दिया कि जैन-श्रमणो की कोड़े से पिटाई की जाय। जैसे ही आचार्य खपुट के शरीर पर प्रहार होने लगा वैसे ही राजा के अन्तःपुर मे रानियो पर कोडों की वर्षा प्रारम्भ हो गयी। वे बुरी तरह चिल्लाने लगी। किन्तु आचार्य खपुट अपनी आत्म-मस्ती मे वही पर आराम से सोते रहे। राजा ने आचार्य से क्षमा-याचना की। आचार्य के दिव्य तपोवल से यक्ष भी अपने वैर को भूलकर उनका शिष्य वन गया अर्थात् उनके सकेत के अनुसार कार्य करने लगा।

जिस समय आचार्य खपुट गुडशस्त्रपुर मे विराज रहे थे, उस समय उनके दो शिष्य बहुत दूर से चलकर उनकी सेवा मे पहुँचे। उन्होने आचार्यश्री को निवेदन किया—गुरुदेव! आपने मुनि भुवन को वहां से चलते समय एक कपर्दी दी थी और उसे गोपनीय रखने के लिए कहा था। पर आपश्री की आज्ञा की अवहेलना कर मुनि भुवन ने उस कपर्दी को खोला। उसमें से एक पत्र निकाला और उसका पाठ कर उसने

विद्या सिद्ध की। उस विद्या के प्रभाव से जहाँ कहीं से भी सुस्वादु श्रेष्ठ भोजन को वह मगाता और उसका वह आहार करता है। हम सभी श्रमणो ने कहा—यह सर्वथा अनुचित है। प्रथम तो तुमने गुरु की आज्ञा की अवहेलना की। दूसरी बात, इस प्रकार आहार मँगवाना श्रमणों की आचार-मर्यादा के विरुद्ध है। इस प्रकार कहने पर हमारे से रुष्ट होकर, बौद्ध विहार मे चला गया। विद्या के प्रभाव से खाली पात्र आकाश मे जाते है और बढ़िया मिष्ठान्न से भरकर लौटते हैं। इस प्रकार विचित्र चमत्कार को देखकर हमारे श्रमण भी उनकी ओर आकर्षित हो रहे है। कृपा कर आप शीघ्र ही पधारे और मुनि भुवन को भी शिक्षा देवे तथा श्रमणाचार के विरुद्ध जो प्रवृत्ति कर रहा है उसे रोके और पुनः जैनधर्म की प्रभावना करें।

अपने शिष्यो की प्रार्थना को सुनकर आचार्य कुछ क्षणो तक चिन्तन करते रहे। उन्होने अपने विशिष्ट ज्ञान से देखा और भड़ौच (भृगुकच्छ) की ओर प्रस्थित हुए। वे भड़ौच पहुँचे और स्वयं एकान्त शांत स्थान में ठहर गये तथा मुनि भुवन द्वारा मंगाये खाद्य पदार्थों से भरे हुए पात्रों को देखा। उन्होंने विद्या के वल से उन पात्रो को आकाश में फोड़ना प्रारम्भ कर दिया। मुनि भुवन समझ गया कि सेर पर सवासेर कोई

ही लाल शाखा ब्राह्मणो की ओर घुमायी त्यों ही ब्राह्मणों के सिर धड़ से अलग होते हुए दिखाई दिये। मुनि महेन्द्र ने कहा—राजन्! क्या तुम्हें भी नमस्कार करूँ?

राजा के पैरो के नीचे की धरती खिसक गई। वह काँप उठा कि कही इन्होंने टहनी इधर घुमा दी तो अभी जमी-दोज हो जाऊँगा। अतः उठकर मुनि महेन्द्र के चरणों में नमस्कार किया। अपने अपराध की क्षमायाचना की कि मैंने अनुचित आदेश जाहिर कर जैन श्रमणो का जो तिरस्कार किया है, उसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। आप इन सभी ब्राह्मणो को स्वस्थ कीजिए नही तो मुझे ब्रह्महत्या का महान् पाप लगेगा। मुनि महेन्द्र ने सफेद कणेर की टहनी घुमायी कि सभी ब्राह्मण पूर्ण स्वस्थ हो गये। उन्होने भी चरणो मे झुककर अपने अपराध की क्षमायाचना की।

आचार्य खपुट को अनेक विद्याएँ सिद्ध थी। आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, निशीथचूर्णि, प्रभावक चरित्र, आदि अनेक ग्रन्थो में उन्हे विद्याचक्रवर्ती, विद्यासिद्ध, आदि विशेषणो से अलकृत किया है। इन्होने अपने विद्याबल से जैनधर्म की अत्यधिक प्रभावना की। इनका आचार्य काल वीर निर्वाण सं० ४५३ से ४८४ माना जाता है। वस्तुतः खपुटाचार्य जैसे प्रभावक

आचार्यों से समय-समय पर जैनधर्म की दिव्य ज्योति प्रज्वलित हुई है। इसमें तनिक मात्र भी शंका नही।

—आवश्यक मलयगिरि वृत्ति

—निशीथ चूर्णि

—प्रभावक चरित्र

—तपागच्छ पट्टावली

— वीरशासन के प्रभावक आचार्य

९

आचार्य शय्यंभव

आचार्य प्रभव को जीवन की सान्ध्य वेला मे एक विचार उद्बुद्ध हुआ कि मेरा पट्टधर कौन बनेगा? उन्होंने अपने विशिष्ट ज्ञान से देखा कि जितने भी उनके शिष्य थे उनमे से एक भी शिष्य ऐसा नही था जो उनके गौरव में चार चाँद लगा सके। उन्होने ज्ञान से जैन-संघ के श्रावको को भी देखा। पर वे भी इस पद के योग्य नही थे। अन्त में उन्होने देखा इस पद के योग्य राजगृह नगर का वेद-वेदाग का पारगत विद्वान् ब्राह्मण शयभव जो प्रकृष्ट प्रतिभा का धनी है जिसके जीवन के कण-कण मे और मन के अणु-अणु मे जिज्ञासाएँ अँगड़ाइयाँ ले रही है, वही सर्वथा योग्य है। विद्वत्ता के साथ उसके जीवन मे सच्चरित्रता एव प्रशासन कुशलता का भी सुन्दर संगम है। संघ के शासन हेतु ऐसे ही विशिष्ट व्यक्ति की आवश्यकता है जिसके कुशल नेतृत्व मे शासन चमक सके। आर्य प्रभव अपने विराट शिष्य समुदाय के साथ ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए राजगृह के गुणशीलक उद्यान मे पधारे।

आर्य प्रभव ने अपने दो प्रधान अन्तेवासियो को बुलाकर कहा—तुम दोनो वत्सगोत्रीय शयभव ब्राह्मण के घर जाओ। वह इस समय यज्ञ कर रहा है। द्वार पर खड़े रहकर तीन वार उच्च स्वर से कहना—

"अहो कष्टमहोकष्ट, तत्त्व न ज्ञायते क्वचित् ।"

—अत्यधिक कष्ट का अनुभव करते हुए भी तत्त्व का परिज्ञान न हो सका। आचार्य के आदेश से वे दोनो शिष्य शयभव के घर पहुँचे और गुरु उपदिष्ट शब्द कहे।

वे शब्द शयंभव के कर्ण-कुहरो मे गूँजने लगे। इन शब्दो से शयभव के हृदय व मस्तिष्क के तार झन-झना उठे। वह चिन्तन करने लगा—मैंने सुना है कि जैन श्रमण मिथ्या नही वोलते। फिर इन्होने कैसे कहा कि मैं तत्त्व नही जानता और मैं व्यर्थ ही कष्ट उठा रहा हूँ ?

तत्त्व क्या है ? इस सम्वन्ध मे चिन्तन करते हुए उन्होने सोचा कि क्यो नही मै इन श्रमणो से ही पूछ लूँ। पर ज्यो ही उसने ऊपर आँख उठाकर देखा तो ज्ञात हुआ कि श्रमण यहाँ नही है। वह श्रमणो से तत्त्व क्या है, यह जानने के लिए उनके पीछे चल पड़ा। शिष्यो ने कहा—विप्रवर ! यदि आपको सही तत्त्व जानना है, हमारे साथ ही जैन सघ के **ज्योतिर्धर** आचार्य प्रभव नगर के वाहर ही विराजे हुए **हैं, उनके**

पास चलिए। वे आपकी जिज्ञासा का सही स
करेंगे।

शयभव आर्य प्रभव की सेवा मे पहुँचे। उ
जिज्ञासा प्रस्तुत की—विज्ञ! बताइये, यज्ञ का
स्वरूप क्या है? और तत्त्व क्या है?

आर्य प्रभव ने मुस्कराते हुए कहा—आपने अ
यज्ञाचार्य से इस सम्बन्ध मे नही पूछा? रात-
जिनके नेतृत्व में आप यज्ञ करते है, उन्हे तो यज्ञ
सही स्वरूप ज्ञात होगा ही। आपको उन्हे अवश्य पूछ
चाहिए।

शयंभव—मैंने यज्ञाचार्य को पूछा अवश्य था
पर उन्होंने इस प्रश्न को ही टाल दिया। उन्होने मे
जिज्ञासा का सही समाधान नही दिया।

प्रभव—यदि आप उन्हें भय दिखाये तो वे
आपको यज्ञ का वास्तविक स्वरूप और तत्त्व का मर्म
बतायेंगे। मै आपको यज्ञ का रहस्य और तत्त्व का
स्वरूप बता सकता हूँ। पर मैं सोचता हूँ कि वे जो
बतायेंगे वह आपके लिए अधिक श्रेयस्कर होगा। आप
पहले उन्हें ही पूछ लें। हाँ, वे यो सहज मे नही बता-
येंगे पर भय बताने से वे सही स्थिति आपके सामने
स्पष्ट कर देंगे।

आर्य प्रभव के सकेतानुसार शयभव पुनः अपने

घर आया और यज्ञाचार्य से पूछा—आप मुझे यज्ञ का रहस्य बताइये।

यज्ञाचार्य ने कहा—जो हम वर्षों से यज्ञ कर रहे हैं वही वास्तविक यज्ञ है और वही तत्त्व भी है।

शय्यभव ने चमचमाते हुए शस्त्रो को निकालते हुए कहा—यदि आपने मुझे यज्ञ का सही स्वरूप नही समझाया और न तत्त्व का रहस्य बताया तो मैं इसी शस्त्र से आपका हनन कर दूँगा।

शय्यभव की आंखे क्रोध से लाल हो रही थी। तीक्ष्ण शस्त्र को देखकर यज्ञाचार्य काप उठा। उसने कहा—वत्स! मुझे मारो मत। मैं तुम्हे सही स्वरूप बताता हूँ। अहिसा, सयम प्रधान यज्ञ ही वस्तुतः सही यज्ञ है। रसलोलुप वृत्ति के कारण जो हम हिसाप्रधान यज्ञ करते रहे हैं वे वस्तुतः यज्ञ नही है। अहिसा ही सच्चा तत्त्व है। मेरे स्वार्थ को ठेस पहुँचती थी, इसलिए आज दिन तक मैंने सही स्वरूप तुम्हारे से छिपाया है।

यज्ञाचार्य की सही बात सुनकर शय्यंभव को नई रोशनी प्राप्त हुई। वह आचार्य प्रभव के पास पहुँचा। कहा—भगवन्! आज दिन तक सही तत्त्व को न समझ कर हिसा करता रहा। धर्म के नाम पर 'वैदिकी हिसा हिसा न भवति' कहकर मैंने हिसा को प्रोत्साहन दिया है। आज ही मुझे सत्यतथ्य का परिज्ञान हुआ

है। अब मै इस ससार में नही रहूँगा। आपका शि
स्वीकार करूँगा।

आचार्य प्रभव ने कहा—हम विना अनुमति
प्रव्रज्या नही देते। तुम्हारे माता-पिता तो नहीं है
तुम्हारी पत्नी तो अवश्य है। दीक्षा के लिए उसकी
मति तो आवश्यक है।

शय्यभव ने अपने घर जाकर अपनी युवती प
से कहा—मै जैनाचार्य प्रभव के पास प्रव्रज्या ले र
हूँ। तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी प्रव्रज्या ग्रहण क
सकती हो।

पत्नी ने कहा—स्वामी! मुझे निराधार छोड़क
कहाँ जा रहे है? मै भी आपका अनुसरण करती,
पर मुझे ऐसा लगता है कि मैने गर्भ धारण कर रखा
है। इसलिए मैं इस समय प्रव्रजित नही हो सकती।
आप भी कुछ समय रुकिए।

किन्तु शय्यंभव की वैराग्य भावना इतनी तीव्र
थी कि जिससे वह एक क्षण भी संसार में रुकना नहीं
चाहता था। अन्त मे पत्नी की अनुमति प्राप्त कर वह
प्रव्रजित हो गया।

प्रव्रज्या ग्रहण करने के पश्चात् शय्यभव ने द्वाद-
शांगी का गम्भीर अध्ययन किया। उसके रहस्यो को

समझा। अन्त मे प्रभव स्वामी ने उनको सर्वथा योग्य समझकर अपने पट्ट पर आसीन किया।

शय्यभव के प्रव्रजित होते ही आसपास की महिलाएं सान्त्वना देने हेतु उसकी पत्नी के पास पहुंची। किसी ने कहा—शय्यभव, कितना निर्दय निकला ? अट्ठाइस वर्ष की उम्र मे ही वह साधु बन गया है। अभी तेरी उम्र ही क्या है ? यदि एक भी पुत्र होता तो उसके सहारे भी तेरी जीवन-नैया पार हो जाती। न पुत्र, न पति।

दूसरी ने कहा—शारीरिक अवयवो से ऐसा प्रतीत होता है कि यह गर्भवती है।

तीसरी ने उस से पूछा—बता, क्या इसका कथन सत्य है ?

उसका मुख लज्जा से लाल हो गया है। क्योकि वह अभी युवती थी। प्रौढ महिलाओ की जैसी वाचालता का उसमे अभाव था और न इतना व्यावहारिक ज्ञान ही था। उसने नीचा सिर किये हुए धीरे से कहा—मणगम (मनक) हां, कुछ है।

जब यह समाचार शय्यभव के स्वजनों को परिज्ञान हुआ तो वे आह्लादित हुए। गर्भ [illegible] होने पर उसने पुत्ररत्न को जन्म दिया।

निकले हुए "मणगम" शब्द के आधार उसका नाम मणक रखा।

बालक मणक आठ वर्ष का हुआ। वह अपने स्नेही साथियो के साथ खेलने लगा तथा अध्ययन भी करने लगा। वह बड़ा ही तेज-तर्रार था—पढ़ने मे भी और खेलने में भी। अतः दूसरे बालक उससे चिढ़ते थे और जब उससे पराजित हो जाते थे तो उसे कहते कि तेरे पिता का तो पता ही नही है और हमारे से बात कर रहा है।

एक दिन बालक मणक ने अपनी माँ से पूछा—माँ ! मेरे पिता कहाँ है ? उनका क्या नाम है ? मैंने आज तक उन्हे नही देखा। मेरे साथियों के पिता तो पने पुत्रों से प्यार करते है। फिर मेरे पिता मेरे से क्यो प्यार नही करते ?

बालक के प्रश्न ने माँ के हृदय को झकझोर दिया। उसे वह दिन स्मरण हो आया जिस दिन शय्यभव ने प्रव्रज्या ग्रहण की थी। उसकी आँखों से, उसको स्मरण कर, आँसू टपक पड़े। कही बालक न देख ले, अतः आँसू पौछती हुई उसने कहा—वत्स ! जब तुम गर्भ मे थे तभी यहाँ पर आचार्य प्रभव आये थे और उन्होने तुम्हारे पिता को समझाया और अपने साथ ले चले। मैने बहुत मना किया किन्तु वे नही माने। आज वे जैन

संघ के एक प्रभावशाली आचार्य शय्यभव है। न तो तेरे पिता ने तेरा मुंह देखा है, और तूने ही उनका मुँह देखा है। इसलिए तू उन्हें कैसे पहचान सकता है ?

वालक मणक माँ को दु:खपूर्ण मुद्रा मे देखना नही चाहता था। उसने उस समय कुछ नही कहा। पर उसके मन मे पिता को देखने की उत्कट अभिलाषा जागृत हुई। एक दिन जब माँ वहुत ही प्रसन्न मुद्रा मे थी, वालक मणक ने कहा—माँ ! क्या मेरी एक इच्छा तुम पूरी करोगी ?

हाँ वेटा ! क्यो नही करूँगी ? तू तो मेरा लाल है। तेरी भावना को पूर्ण करना मेरा कर्तव्य है। वता, तेरी क्या इच्छा है ?

माँ ! मैं चाहता हूँ अपने पिता के दर्शन करूँ। मेरे हृदय मे पितृदर्शन की तीव्र लालसा है। वताओ, वे इस समय कहाँ हे ?

माँ ने ज्यो ही मणक के मुँह से पितृदर्शन की भावना सुनी त्यों ही उसका हृदय काँप उठा—क्या यह भी अपने पिता की तरह मुझे छोड़कर चला जाएगा ? उसने कहा—वत्स ! तेरे [illegible] समय चम्पानगरी मे है। चम्पानगरी यहाँ से [illegible] है [illegible] इसलिए जब वे यहाँ आएँगे मैं तुझे [illegible] ले चलूँगी।

माँ, वे कब आयेगे ? इसका कोई पता नहीं चाहता हूँ कि चम्पा जाकर उनके दर्शन करूँ। तुम मुझे जाने की अनुमति नहीं दोगी ?

पुत्र को गले लगाते हुए माँ ने कहा—तुम बहुत छोटे हो। अकेले कहाँ जाओगे ? क्या मुझे अ छोडकर जाओगे ?

माँ ! मै और कही नही जाता। अपने पिता पास ही तो जा रहा हूँ। तुम इतनी चितित क्यों रही हो ? मुझे आज्ञा दो। मैं पिता के दर्शन करूँगा

अन्त में माँ पुत्र को दुःखी देखना नही चाह थी। उसके कोमल हृदय ने उसे जाने की अनुमति दी। बालक राजगृह नगर से बाहर आया, जहाँ चम्पापुरी जाने के लिए रास्ता था। बालक ने ए व्यापारी को पूछा—यह सामान से लदी हुई गाड़ी कह जा रही है ?

उसने बताया—यह चम्पापुरी जा रही है। बता तुझे क्या काम है ?

मै भी चम्पापुरी जाना चाहता हूँ। क्या तुम मुझे गाडी में बिठाकर ले जाओगे ?

व्यापारी ने पूछा—तुम वहाँ पर क्यो जाना चाहते हो ? क्या काम है ?

उसने बताया—मेरे पिता वहां है। मैं उनसे मिलने के लिए वहाँ जाना चाहता हूँ।

व्यापारी का भावुक हृदय पिघल गया। उसने कहा—चलो! मैं तुम्हे चम्पानगरी ले चलूंगा। पर, चम्पानगरी के द्वार पर ही तुम्हे उतार दूंगा। क्या तुम अपने पिता के पास वहाँ से पहुँच जाओगे।

बालक ने कहा—आप मुझे चम्पानगरी के द्वार पर छोड दे। मैं वहां से अपने पिता के पास पहुँच जाऊँगा।

व्यापारी के साथ बालक मणक चपानगरी पहुँचा। व्यापारी ने नगर के बाहर उसे गाडी से उतार दिया। बालक मणक सोच रहा था—किधर जाऊँ? इतने मे आचार्य शय्यंभव शौच निवृत्ति के लिए नगर के बाहर निकले। मुनिश्री को देखकर बालक मणक ने सोचा—ये मुनि मेरे पिता को अवश्य ही पहचानते होंगे। इन्हे मेरे पिता के समाचार ज्ञात होंगे। इन्ही से समाचार पूछ लूँ।

उसने नमस्कार कर मुनि से पूछा—क्या आप आर्य स्वयभव को जानते है?

बालक को देखते ही आचार्य के हृदय में सहज-स्नेह उमड़ पडा। उन्होने मधुर शब्दो मे पूछा—तू आर्य शय्यभव को कैसे जानता है?

बालक ने कहा—वे मेरे पिता है। मै राजगृह नगर का निवासी हूँ। मेरा नाम मणक है। मैंने उन्हें आज तक देखा नहीं है। कृपा कर मुझे उनका अता पता बता दीजिए।

वत्स! मैं तुम्हारे पिता को जानता हूँ। वे और मैं अभिन्न हैं। मुझे ही पिता-तुल्य समझकर अपने हृदय की बात कहो।

बालक ने कहा—मैं अपने पिता के पास रहना चाहता हूँ। माँ की अनुमति लेकर मै आया हूँ।

आचार्य उसे लेकर अपने स्थान पर आये। आचार्य ने अपने विशिष्ट ज्ञान से जाना कि बालक मणक की उम्र केवल छः महीने की अवशेष है। छः महीने के स्वल्प समय मे वह श्रुतसागर का पारायण ॰ कर सकता और सासारिक नाते से पिता होने के का॰ ' मेरा कर्तव्य है इसका भविष्य सुधरे।

उन्होने बालक मणक के लिए विभिन्न पूर्वसाहित्य मे से सार लेकर दशवैकालिक सूत्र का निर्माण किया। सायंकाल के विकाल में पूर्ण होने से उसका नाम दशवैकालिक रखा गया।

आचार्य ने उसका अध्ययन करवाया जिसके कारण उसके जीवन मे विनयशीलता, आज्ञापालकता आदि विभिन्न गुण विकसित हुए। उसने सम्यक् प्रकार

से श्रमणधर्म की आराधना की। अंतिम समय में आचार्य ने उसे स्वयं आराधना करवायी। समाधिमरण प्राप्त कर छः महीने में ही वह स्वर्गगति को प्राप्त हुआ।

बालक मणक की मृत्यु के पश्चात् आचार्य की आंखें कुछ गीली हो गयीं। यशोभद्र आदि श्रमणों ने पूछा—गुरुदेव ! आज तक आपके चेहरे पर कभी खिन्नता नहीं देखी। आज यह सागर कैसे विचलित हो गया ? यह कुछ समझ में नहीं आया।

आर्य शय्यंभव ने कहा—मुनि मणक, मेरा संसार-पक्षी पुत्र था। इतनी स्वल्प आयु में साधना कर वह स्वर्ग को प्राप्त हुआ है। पुत्र-मोह के कारण मेरी आंखें गीली हो गयी। यदि उसकी लम्बी आयु होती तो वह लम्बी साधना करता।

यशोभद्र ने कहा—बालक मणक आपका पुत्र था, यह आपने हमें पहले क्यों नहीं बताया ? यदि हमें पहले ज्ञात होता तो गुरुपुत्र की सेवा का लाभ मिलता।

आचार्य ने कहा—इसीलिए तो मैंने नहीं बताया था। आप उस पर अधिक स्नेह करते जिससे वह साधना से वंचित हो जाता। स्वल्प समय में उसने जो साधना की, वह न कर पाता। मैंने उसके लिए पूर्वों में से आवश्यक ज्ञान हेतु सार रूप दस अध्यायों का

निर्माण किया। उसे पुनः पूर्वों में मिलाना चाहता हूँ।

यशोभद्र आदि मुनियों ने कहा—भगवन्! जिस सूत्र की रचना की है वह श्रमण-श्रमणियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। अतः इसे रहने दें।

आचार्य ने शिष्यो की व संघ की प्रार्थना को स्वीकार कर उसे रहने दिया। आज भी वह आगम श्रमण-श्रमणियों की साधना के लिए ज्योतिस्तम्भ के रूप में है और उस आगम का नाम दशवैकालिक है।

—परिशिष्ट पर्व

—दशवैकालिक, अगस्त्यसिंह चूर्णि

१०

कवि कुलभूषण मुनि रामचन्द्र

गुजरात के इतिहास मे राजा कुमारपाल के शासन का समय स्वर्ण-काल माना जाता है। महाराजा कुमारपाल के सुशासन की सुगध से सर्वत्र प्रेम की सरस सरिता प्रवाहित होने लगी। अहिसा का आलोक जगमगाने लगा। और उसका श्रेय था कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र को, जिनके पावन उपदेशों से प्रभावित होकर उसने सर्वत्र 'अमारी पटह' की उद्घोषणा करवायी थी। यहां तक कि उसके राज्य मे पशुओ को भी छानकर पानी पिलाने की व्यवस्था थी। चाहे जैन धर्मावलम्बी हो चाहे वैदिक धर्मावलम्बी हो उनमे किसी भी प्रकार का मतभेद नही था। सभी को अपनी इच्छा से धार्मिक साधना करने की छूट थी।

आचार्य हेमचन्द्र के दो मुख्य शिष्य थे—बालचन्द्र और रामचन्द्र। ये दोनों भी सरस्वती के पुत्र थे। अपनी कमनीय कविता से ये जन-जन के मन मे त्याग-निष्ठा और सयम की प्रतिष्ठा करते थे। कवि मुनि रामचन्द्र ने निन्यानवे काव्य-ग्रंथों का प्रणयन किया

था। सौवें काव्य-रचना में वे प्रवृत्त थे। जिस दि सौवाँ काव्य ग्रन्थ पूर्ण होगा उस दिन वे 'प्रबधशत कर्ता' की श्रेष्ठ उपाधि से अलंकृत बनेंगे।

इधर आचार्य हेमचन्द्र का स्वर्गवास हो गया और कुमारपाल का भी। आचार्य हेमचन्द्र के पाट पर बाल-चन्द्र आसीन हुए तो कुमारपाल के राज्य सिहासन पर अजयपाल। मुनि बालचन्द्र बहुत ही ईर्ष्यालु प्रकृति का था। कविवर रामचन्द्र जो उसका गुरु-भ्राता था जि की यश-गरिमा दिग्-दिगन्त मे गूंज रही थी, उस वह जलता था। वह चाहता था कि मेरा नाम हो औ रामचन्द्र को लोग भूल जायें।

राजसभा मे मुनि बालचन्द्र बैठे हुए थे। अजय-पाल ने कहा—सभासदो ! जैन और ब्राह्मण को एक माननेवाले मेरे राज्य में नही रह सकते। ब्राह्मण का जैन होना मैं पाप मानता हूँ। ब्राह्मण कभी भी जैन नही हो सकता, क्योकि वह अग्र-जन्म है।

राजा अजयपाल ने मुनि कवि बालचन्द्र की ओर मुडकर कहा—बालचन्द्र ! मेरी आज्ञा का पूर्ण पालन होना चाहिए। तुम्हारे गुरुजी हेमचन्द्र ने ब्राह्मणधर्म को लुप्त करने का अथक प्रयास किया। उन्होने जैन-धर्म की प्रशस्तियाँ लिखी। आज से आप मेरी प्रशस्ति लिखेगे और उसमें ब्राह्मणधर्म के उन्नायक अजयपाल के शासन की गौरव गरिमा अकित होगी।

मुनि बालचन्द्र ने कहा—राजन् ! मैं तो लिख दूँगा। पर, मेरा गुरु भाई रामचन्द्र जो निन्यानवे प्रबन्ध-काव्य लिख चुका है, सौवाँ प्रबन्ध काव्य उसका पूर्ण होने वाला है। उन सभी ग्रन्थो मे जैनधर्म के गुण-गान गाये गये है और सर्वत्र जैन व वैष्णव व शैवधर्म का समन्वय किया गया है।

अजयपाल ने बीच मे ही गरजकर कहा—जिन ग्रन्थो में मेरी प्रशस्ति नही है और जिन ग्रन्थो मे वैदिक धर्म की यशो-गाथा नही गायी गयी है, वे सभी ग्रन्थ भस्म कर दिये जाएंगे। याद रखो, सभी ग्रन्थो मे मेरी पुण्य-प्रशस्ति होनी चाहिए, क्योंकि मैं पाटन का राजा हूँ और मैं वैदिक धर्म को मानने वाला हूँ।

बालचन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा—आप रामचन्द्र के ग्रन्थो को भस्म कर देंगे, किन्तु जो बात जनता-जनार्दन के कण्ठ मे उतर चुकी है उसे आप कैसे विस्मृत करा सकते है ?

अजयपाल ने चमचमाती हुई तलवार हाथ मे लेते हुए कहा—मेरी यह तलवार या तो उन कविताओ को भुला देगी या उन व्यक्तियो को समाप्त कर देगी।

बालचन्द्र ने कहा—राजन् ! जैनधर्म मे या वैदिक धर्म मे अनेक बातो मे समानता है। अहिंसा, दया, परोपकार, अस्तेय, आत्मा की अमरता ये सभी बातें

जैनधर्म में भी हैं और वैदिक धर्म मे भी। यहाँ जैन और वैदिक धर्म एक हो गये है। चाहे ब्रह्मा हो चाहे विष्णु हो, चाहे हर हो, चाहे जिन हो, जिन्होंने रागद्वेष को नष्ट कर दिया है, जैन उन सभी को नमस्कार करता है। मै समझता हूँ जहाँ आत्म-कल्याण की मंगलमय भावना का प्रशन है वहाँ जैनधर्म और वैदिक-धर्म में अत्यधिक समानता है।

राजा अजयपाल ने अपनी तलवार बालचन्द्र पर उठाई। वह उसे मारना चाहता था क्योंकि उसने उसके मन के प्रतिकूल बात कह दी थी। बालचन्द्र ने देखा—जीवन खतरे में है, अतः राजा के चरणो मे गिरते हुए अपने प्राणो की भिक्षा माँगी और कहा—राजन्! यह मेरी मान्यता नही है, कवि रामचन्द्र ने जो अपने काव्य में लिखा है, उसे ही मैंने आपको ...ता। है।

जब राजा अजयपाल का क्रोध शात हुआ तब उन्होने बालचन्द्र को कहा—तुम अपने गुरुभाई रामचन्द्र को समझाओ। यदि वह मेरी आज्ञा को स्वीकार करेगा तो मैं उसे "कलिकालसर्वज्ञ" की उपाधि से अलकृत कर दूँगा और यदि वह आज्ञा की अवहेलना करेगा तो मैं उसे मौत के घाट उतार दूँगा। ब्राह्मण और जैन कभी एक न हुए हैं और न होगे ही। यह तो केवल कुमारपाल के चापलूसो की चाल है।

प्रधानमन्त्री को आदेश देते हुए अजयपाल ने कहा—गुर्जर प्रदेश मे एक भी जैन प्रतीक न रहे। जैन उपाश्रय, मन्दिर, जैन भण्डार आदि सभी को समाप्त कर दे।

मन्त्री एक क्षण तक सोचने लगा—कहाँ यह अजयपाल और कहाँ कुमारपाल जो सभी को आदर की दृष्टि से देखता, कभी भी उसके राज्य मे द्वेष-बुद्धि नही थी। पर राजाज्ञा का पालन तो करना ही होगा। यह राजाज्ञा अनुचित ही नही सर्वथा अनुचित है, तथापि उसका पालन करना मेरे लिए अनिवार्य है।

उसने राजाज्ञा से जैनधर्म के स्थानो को नष्ट कर दिया।

कवि रामचन्द्र अपने उपाश्रय मे बैठे हुए कविता का सृजन कर रहे थे। आज उनके मन में अपूर्व प्रसन्नता थी कि सौवाँ काव्य पूर्ण हो जायगा। द्रुत गति से उनकी लेखनी चल रही थी। एक पद्य के पश्चात् दूसरा पद्य लिखते जा रहे थे। तभी एक श्रद्धालु श्रावक ने आकर कहा—गुरुदेव! आप तो कविता-निर्माण मे लगे हुए हैं। आपको पता ही नही है पाटन मे इस समय क्या हो रहा है।

कवि रामचन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा—मेरा क्या होने वाला है? मैं आज यही सोच रहा हूँ कि सौवाँ काव्य पूर्ण हो जाय तो अच्छा है।

श्रावक ने कहा—क्या आप अपने काव्य ग्र
यज्ञ मे आहुति देने के लिए रच रहे है ? मैं ही
किन्तु जिन्होने आपके काव्य को सुना है, आपके
को पढ़ा है वे ग्रन्थों को पढ़कर भाव-विभोर होते
है। वस्तुत: आपके ग्रन्थ मुर्दों में प्राण फूंक देते हैं।
राजा अजयपाल अत्यधिक दुष्ट प्रकृति का है।
समन्वयात्मक नीति पसन्द नही है। जैनधर्म के प्र
उसके मानस मे अत्यधिक घृणा की भावना है। इसलि
वह चाहता है कि आप उसकी झूठी प्रशंसा करे। प
आप उसकी झूठी प्रशंसा नही करते, इसलिए वह आप
सभी ग्रन्थों को भस्म करवाना चाहता है और ज:
वह सम्पूर्ण ग्रन्थ को भस्म कर देगा तभी उसकी कोपाग्नि
शान्त होगी।

कवि मुनि रामचन्द्र ने कहा—अजयपाल को मेरे ग्रन्थों पर क्यो क्रोध है ? मैने उसका कुछ बिगाड़ा नही है। चाहे राजा कोई भी हो, मेरे काव्य को छीन नहीं सकता।

श्रावक ने कहा—गुरुदेव ! आपको पता नही है अजयपाल की दुष्टवृत्ति का। जो उसकी हाँ मे हाँ मिलाता है वह आदर पाता है और जिसने उसका विरोध किया उसे जीने का अधिकार नही। जैन और ब्राह्मण के भेद को वह उभारना चाहता है। यदि आप

जीवित रहना चाहते हो तो अपनी कविता की धारा को मोड दीजिए। आपको अपने भाव व विचार बदलने होगे। तभी आप इस राज्य में रह सकते हैं। देखिए, बालचन्द्र आपके गुरुभाई हैं। समय को देखते हुए उन्होंने अपने विचारों को बदल दिया। यदि जलपोत हवा की रुख को देखकर आगे बढ़ता है तो लक्ष्य स्थल पर पहुँच जाता है, नहीं तो वह नष्ट हो जाता है। आप अपने हठ को नहीं छोड़ेंगे तो अजयपाल आपका अनिष्ट कर देगा।

कवि मुनि रामचन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा—स्पष्ट शब्दों में कहो, वह मार देगा। मुझे तो गिरगिट की तरह रंग बदलना नहीं आता। सूर्य कभी पश्चिम में उदय नहीं हो सकता। तुम कहते हो कि बालचन्द्र मेरा गुरुभाई है। उसकी तरह मुझे भी बदलना चाहिए। पर यह सर्वथा असंभव है। समुद्र में अमृत का खजाना भी मिलता है और जहर भी प्राप्त होता है। बालचन्द्र का काव्य भले ही अजयपाल के शासन की प्रशंसा करे पर उस अत्याचारी एवं क्रूर शासक के लिए मेरी लेखनी एक भी अक्षर नहीं लिख सकती। न मैं उसकी निन्दा करना चाहता हूँ और न स्तुति ही। मुझे तो अपने गुरुदेव की आज्ञा ही शिरोधार्य है, राजाज्ञा नहीं। आत्मा अजर-अमर है। उसे कोई नहीं मार सकता। भौतिक शरीर तो पहले से ही मरा हुआ

उसको क्या मारना ? यदि अजयपाल ने मुझे मार भी भी दिया तो मुझे इसकी चिन्ता नही। मैं यही सोचूँगा कि पूर्व बँधे हुए कर्मो के कारण ही ऐसा हुआ है।

कवि मुनि रामचन्द्र अपनी बात पूर्ण भी न कर पाये थे कि अजयपाल के राजसैनिक उपाश्रय मे आ पहुँचे। उन्होने कवि रामचन्द्र को वन्दी वना दिया। आज राजसभा मे हजारों श्रोताओ की भीड़ खचाखच भरी हुई थी। वे देखना चाहते थे कि कवि रामचन्द्र क्या कहते है। तभी महामन्त्री ने उद्घोषणा की—युग वदल चुका है। राज्य परिवर्तन हो चुका है। महाराज अजय-पाल के राज्य मे कोई भी व्यक्ति जैनियो के अरिहन्त और महेश्वर में एकता स्थापित नही कर सकता। जैनियो के देव ब्राह्मणो के देव नही बन सकते और ब्राह्मणो के देव जेनियो के देव नही हो सकते। ये वेमेल खिचड़ी अब नही पक सकती। जो दोनो मे अभेद स्थापित करता है वह मृत्युदण्ड का भागी होगा। राजा अजयपाल का कहना है कि दूध और पानी को मिलाना ठीक नही। कवि वालचन्द्र का अनुसरण कर यदि रामचन्द्र अपने हठ का परित्याग करते हैं तो राजा के द्वारा सम्मानित होगे। यदि उन्होने हठ नही छोड़ा तो वे उसका फल भोगेंगे और जो राज-विद्रोह करते है उन्हे सही शिक्षा प्राप्त होगी।

सभा मे वन्दी के रूप मे मुनि रामचन्द्र को उपस्थित किया गया। सभी जानना चाहते थे कि अब क्या होता है? तभी राजा अजयपाल ने रामचन्द्र की ओर मुडकर कहा—रामचन्द्र! तुमने राजा की आज्ञा का उल्लघन किया है। मेरी आज्ञा थी जैन और ब्राह्मण दोनो पृथक् है। दोनो मे किसी प्रकार का मेल नही। जो समन्वय के गीत गाये जाते हैं वे ठीक नही है पर परिताप है कि तुमने मेरी आज्ञा पर कुछ भी ध्यान नही दिया। अब तुम्हे उसका प्रायश्चित्त लेना होगा।

कवि रामचन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा—राजन्! कवि किसी की आज्ञा से नही लिखता। वह तो अपनी इच्छा से लिखता है। जब मैंने आपकी आज्ञा मे लिखा ही नही तो उसे वन्द कैसे करता?

राजा- आज से मेरी प्रशस्ति मे लिखो। मेरी प्रशस्ति मे लिखोगे तो मैं तुम्हे "कलिकाल-सर्वज्ञ" की उपाधि से अलकृत करूँगा।

कवि—राजन्! मैं तुम्हारा भाट या चारण नही हूँ जो तुम्हारी मिथ्या प्रशस्तियाँ लिखता फिरूँ। मैं जो भी लिखता हूँ वह आत्मसन्तोष के लिए लिखता हूँ। मेरी कविता स्वान्त सुखाय है। मै अपने गुरुभाई बालचन्द्र का अनुसरण नही कर सकता। मुझे तुम्हारे

द्वारा दिये गये शारीरिक सुख के लिए अपनी आत्
को नही बेचना है।

वीच मे ही ईर्ष्यालु बालचन्द्र ने राजा को भड़का
हुए कहा—राजन् ! मेरे गुरुभाई रामचन्द्र को
काव्य लिखने का वहुत बडा घमण्ड है। भरी सभा
यह मेरा अपमान कर रहा है। मेरा ही नही, आपक
भी अपमान कर रहा है।

अजयपाल—कवि बालचन्द्र! तुम घबराओ नही
मै अभी-अभी रामचन्द्र का अहकार नष्ट करूंगा
अव इसकी जीभ ज्यादा देर नही चलेगी। देखो
राजाज्ञा का उल्लघन करने वाले को क्षमा नही किया
जा सकता।

क्रोध से पागल बने हुए अजयपाल ने जल्लादो से
कहा—लोहे की गरम शलाकाएँ कवि रामचन्द्र की
आँखो में आँज दो।

पर कवि के भव्य भाल पर वही तेज, वही क्षमा
झलक रही थी। कवि रामचन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा-
राजन् ! आपने मेरी आँखो को छीन लिया है। पर
मेरे अतर्चक्षुओं को छीनने की शक्ति आप मे नहीं है।

वालचन्द्र ने राजा अजयपाल से निवेदन किया—
राजन् ! आपने रामचन्द्र को अन्धा वनाकर इसकी
प्रतिभा को और बढ़ा दिया है। अन्धे व्यक्तियो की

कविता में प्रलय उपस्थित करने की शक्ति होती है। आपके द्वारा दिया गया यह दण्ड इसके लिए वरदान स्वरूप हुआ। यह जहां भी जायेगा वहीं आपकी अपकीर्ति होगी। अतः इसे मृत्युदण्ड देना चाहिए।

अजयपाल ने कविवर रामचन्द्र की ओर मुड़कर कहा—तुम अपने हठ का परित्याग करो। यदि तुमने अपना हठ छोड़ दिया तो मैं तुम्हारा सम्मान करूंगा। 'कलिकालसर्वज्ञ' की उपाधि से तुम्हें अलंकृत करूंगा।

कवि रामचन्द्र ने गम्भीर गर्जना करते हुए कहा—राजन्! मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं। 'कलिकालसर्वज्ञ' तो मेरे गुरु थे। तुम मेरे शरीर को नष्ट कर सकते हो किन्तु मेरी आत्मा को नहीं। मेरी हार्दिक यही इच्छा है कि

स्वतन्त्रो देव! भूयास, सारमेयोऽपि वर्त्मनि।
मा स्म भूय परायत्तः त्रैलोक्यस्यापि नायकः॥

(हे राजन्! मानव मात्र की स्वतन्त्रता पूर्णरूप से रहे, परतन्त्र होकर त्रिलोकों के नायक बनने की अपेक्षा स्वतन्त्र कुत्ता बनना अच्छा है।)—आज दिन तक सरस्वती किसी की भी अनुचरी नहीं बनी है। मेरा भौतिक शरीर भले ही नष्ट हो जाय, किन्तु लोभ के वशीभूत होकर मैं अत्याचार को सहन नहीं कर सकता

मृत्यु के भय से मै अपनी वाणी को कलकित नही क
सकता।

कवि रामचन्द्र के अन्तिम शब्द दशो दिशाओ
गूँज उठे।

क्रोध मे पागल बने हुए अजयपाल ने दण्ड देते हु
कहा—कवि अपने आप को जगत का राजा मानता है
अतः तप्त तवे के सिहासन पर इसे आसीन कराओ
खौलते हुए तेल से इसका अभिषेक करो। लोहे क
गरम किया हुआ मुकुट इनके सिर पर धारण कराओ

राजाज्ञा को सुनकर क्रूरहृदय जल्लादो के दिल
भी काँप उठे। दण्ड दिया जा रहा था और कवि सम
भाव मे लीन था। वह सोच रहा था कि मेरे कर्मों के
बन्धन शिथिल हो रहे है। उसने शुभभाव से नश्वर
शरीर का त्याग किया। किन्तु उसका यश.शरीर आज
भी जीवित है और सदा जीवित रहेगा। कवि रामचन्द्र
की स्वतन्त्र भावनाएँ और निर्मल विचारधाराएँ सदा
जन-जन को प्रेरणा देती रहेंगी।

११

कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र

'कलिकाल सर्वज्ञ' आचार्य हेमचन्द्र अपने विद्वान शिष्यों के साथ पाटन मे वर्षावास कर रहे थे। प्रवचन मे पाण्डव-चरित्र चल रहा था। आचार्यश्री की प्रवचन शैली इतनी मधुर थी कि सैकडो श्रोतागण प्रवचन श्रवण करने के लिए प्रस्तुत होते। क्या जैन और क्या अजैन सभी समान रूप से आते और प्रवचन-रस का पान कर अपने आप को धन्य अनुभव करते।

एक दिन प्रवचन मे पाण्डवो की मुक्ति के प्रसग मे आचार्यप्रवर ने कहा—वे शत्रुजय पर्वत पर मुक्त हुए। यह सुनते ही एक ब्राह्मण पण्डित ने सोचा—महाराज जयसिह सिद्धराज जो शैव धर्मानुयायी है और जैनधर्म के प्रति उनके अन्तर्मानस मे घृणा है, क्यों न मै इस प्रसग को लेकर उन्हे भडकाऊँ और विरोधी वातावरण तैयार करूँ।

दूसरे दिन पण्डित सिद्धराज की सभा मे पहुचा और कहा—राजन्! यह जैनो हमारे धर्म के विपरीत

प्रचार करते है। आपके ही राज्य मे आपके सिद्ध
विरुद्ध प्रचार करना कहाँ तक उचित है।

सिद्धराज जयसिह ने पूछा—ऐसी क्या वात है ? विस्तार से वताओ।

पण्डित ने कहा—राजन् ! आप जानते है पा
हिमालय पर्वत पर मुक्त हुए है और वही से धर्म
युधिष्ठिर सदेह स्वर्ग गये है। पर आचार्य हेम
कहते हैं कि पाण्डव शत्रुंजय पर्वत पर मुक्त हुए
सर्वथा गलत है।

सिद्धराज जयसिह ने अपना दूत भेजकर आच
को राजसभा में बुलवाया। शिष्टाचार के पश्च
सिद्धराज जयसिंह ने पूछा—आचार्य प्रवर ! आजक
आप किस विषय पर प्रवचन कर रहे है ?

आचार्य हेमचन्द्र—आजकल पाण्डव चरित्र च
ए। है।

राजा—पाडव कहाँ पर मुक्त हुए थे ?

आचार्य हेमचन्द्र ने कहा—जैन-पाडव-पुराण के अनुसार वे शत्रुंजय पर्वत पर मुक्त हुए है और महाभारत मे वेदव्यास ने कहा है—कौरव पाण्डव युद्ध मे वीर अर्जुन के वाणो से दानवीर कर्ण मरणासन्न हो चुका था। उस समय कृष्ण ने ब्राह्मण का वेश वनाकर उससे दान की याचना की। दानवीर कर्ण का यह नियम

था कोई भी याचक उसके द्वार से खाली नही लौटता था। अतः दुखी बनकर कहा—विप्रवर ! इस समय मेरे पास कुछ भी नही है।

विप्र ने कहा—राजन् ! मैं आपका नाम सुनकर बहुत दूर से आया था। लगता है किसी ने झूठा ही तुम्हारा नाम दानवीर रख दिया। यहाँ से मैं तो निराश होकर लौट रहा हूँ।

दुःखी होकर कर्ण ने अपने दांतो से जीभ काटी। दांतो से जिह्वा का स्पर्श होते ही उन्हे अनुभव हुआ उनके दातो मे एक दांत स्वर्ण का है। उन्होने ब्राह्मण से कहा—विप्रवर! रुकिए, मेरा एक दांत सोने का है। मैं उसे तोडकर आपको समर्पित करूंगा। कृपया पत्थर उठाकर मुझे दे दीजिये।

ब्राह्मण ने कहा—यह कैसा दान ? तुम हमारे से काम करवा कर पारिश्रमिक देना चाहते हो। यदि तुम्हे दान ही देना है तो स्वय पत्थर उठाकर दांत तोडकर दे दो। नही तो हम खाली हाथ ही लौट जाएँगे।

कर्ण ने अनुनय किया—आप रुष्ट न बनिये। मैं स्वय पत्थर उठाऊंगा। दांत तोडकर आपको अर्पण करूंगा।

शरीर मे अपार वेदना होने पर भी कर्ण धीरे-

धीरे सरकने लगा। उसके घावों से रक्त की धारा बह रही थी तथापि धैर्य से रेंगता हुआ और पत्थर को अपने ऊपर जोर से लगाया। पत्थर की चोट से उसके दाँत टूट गये। जमीन की ओर मुँह करके उसने खून उगल दिया। उसी खून से सने हुए दाँत बाहर आए। उनमे से स्वर्ण दाँत को पोछकर ब्राह्मण को देते हुए कहा—लीजिए, विप्रवर!

कर्ण की दानवीरता को देखकर कृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रकट होकर कहा—मैं तुम्हारे पर प्रसन्न हूँ। जो इच्छा हो वह वर माँगो।

कर्ण—प्रभु! आपके इस समय दर्शन कर मेरी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो चुकी हैं, मुझे और कोई इच्छा नही है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपके दर्शन से अवश्य मुक्ति प्राप्त होगी।

कृष्ण—तुम्हे कुछ न कुछ माँगना ही चाहिए।

कर्ण—भगवन्! यदि आपको इच्छा है तो मेरी दाहक्रिया ऐसा स्थान पर हो जहाँ पर पहले किसी की दाहक्रिया न हुई हो।

श्रीकृष्ण ने 'तथास्तु' कहा और कर्ण के प्राण पखेरू उड़ गये।

श्रीकृष्ण कर्ण के शव को लेकर इधर से उधर ऐसे स्थान की अन्वेषणा करते रहे जहाँ किसी की दाह-

क्रिया न हुई हो। पर ऐसा कोई स्थान न मिला अन्त मे वे समुद्र के बीच मे एक निर्जनद्वीप पर पहुँचे। कृष्ण ने सोचा यह स्थान इतना एकांत और शान्त है कि यहां पर किसी की दाहक्रिया नही हुई होगी। अत. उन्होने चिता तैयार की। इतने मे ही एक आकाशवाणी हुई—

अत्र द्रोण शत दग्ध, पाडवाना शतत्रयम्।
दुर्योधन सहस्रं च, कर्णसख्या न विद्यते॥

हे कृष्ण! प्रस्तुत स्थान पर एक सौ द्रोण, तीन सौ पाडव तथा एक हजार दुर्योधनो को जलाया गया है और कितने कर्ण जलाये गये है उसकी तो परिगणना ही नही की जा सकती है।

आकाशवाणी को सुनकर कृष्ण ठगे-से रह गये।

आचार्य हेमचन्द्र ने कहा—राजन्! उस समुद्र के द्वीप मे तीन सौ पाण्डव जले हो तो पाण्डव शत्रुजय पर्वत पर मुक्त हुए हो या हिमालय पर्वत पर मुक्त हुए हो उसमे कहां अन्तर आता है।

इस प्रकार आचार्यप्रवर के तर्कयुक्त वचनो को सुनकर सिद्धराज परम सतुष्ट हुए और आचार्य हेमचन्द्र अपने उपाश्रय लौटने लगे तब राजा ने उनसे कहा—आप अच्छी तरह से धर्म का प्रचार कीजिए। वस्तुत: भ्रम होने से ही मैने आपको कष्ट दिया। आपने जो निराकरण किया वह यथार्थ है।

ब्राह्मण पंडित के पास कोई उत्तर नही
आचार्य हेमचन्द्र की प्रतिभा के सामने वह कुछ भ
बोल सका।

× × ×

पाटन के सिहासन पर कुमारपाल आसीन हुए क्योकि उनकी युवावस्था राजा सिद्धराज से युद्ध कर हुए व्यतीत हुई थी अतः युद्ध के कारण उन्हें सस्कृत भाष के अध्ययन का समय ही न मिल पाया था। एक वार वे राजसभा मे बैठें थे। एक विद्वान उन्हे कामन्दकीय नीतिशास्त्र सुना रहा था। उसमे एक श्लोक आया—

"पर्जन्य इव भूतानामाधारः पृथिवीपतिः।"

प्रस्तुत पद का अर्थ करते हुए विज्ञ ने कहा—राजा मेघ के सदृश है। वह समस्त प्राणियो का आधार है।

इसे सुनकर कुमारपाल अत्यधिक प्रसन्न हुए–अच्छा राजा को मेघ की उपम्या दी गई है।

महामन्त्री कपर्दी ने "उपम्या" अशुद्ध शब्द का प्रयोग सुना तो उसका सिर लज्जा से झुक गया। उसके चेहरे पर विषाद की रेखाएँ उभर आईं। जव राजा ने महामन्त्री की ओर देखा तो समझ गया कि मेरे से भूल अवश्य हुई है। एकान्त मे राजा ने मन्त्री से पूछा—उस समय तुम्हारा चेहरा क्यों मुरझा गया था?

राजन्! अप्रसन्न न हों तो कहूँगा। नीति मे कहा

गया है—राजा होना अच्छा है, न होना भी अच्छा है, किन्तु मूर्ख राजा होना अच्छा नही है।

राजा कुमारपाल को अपने लिए 'मूर्ख' शब्द सुनकर क्रोध आ गया—क्या मैं मूर्ख हूँ ?

हाँ, राजन् ! यदि आप अध्ययनशील होते तो उपम्या जैसे अशुद्ध शब्द का प्रयोग नहीं करते। जो चाटुकार है वे आपकी भले ही प्रशंसा करे किन्तु मैं अपने राजा को इस प्रकार अशुद्ध प्रयोग करते हुए देख नही सकता। यह आपके गौरव के प्रतिकूल है।

राजा कुमारपाल को अपनी भूल का परिज्ञान हुआ। उसने विद्वानो के पास अनेक बार 'उपमा' शब्द सुना था। उसने यह दृढसंकल्प किया कि इस बार संस्कृत व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करेगा। उसने उसी दिन से अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। शनैः शनैः उसने काव्य और अलंकार तथा व्याकरण पर अधिकार प्राप्त कर लिया। वह प्रतिदिन आचार्य हेमचन्द्र के बनाये हुए योगशास्त्र और वीतरागस्तोत्र का पाठ करता था। उसी की प्रेरणा से उत्प्रेरित होकर आचार्य हेमचन्द्र ने त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र का निर्माण किया। त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र आचार्य हेमचन्द्र की अपूर्व रचना है जिसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, प्रतिवासुदेव और बलदेव के पवित्र चरित्रों का वर्णन है।

× × ×

एक बार आचार्य हेमचन्द्र राजस्थान के स्थान पर पधारे। मार्ग मे एक नन्हा सा गाँव था गरीब वृद्धा ने अपने ही हाथों से सूत कातकर चद्द निर्माण किया था। जब आचार्यश्री वहाँ पर पधा उस वृद्धा ने अत्यन्त भक्ति भावना से विभोर ह आचार्य प्रवर को उस चद्दर को लेने का आग्रह कि आचार्य देव ने कहा—मुझे इसकी आवश्यकता नही

वृद्धा की आँखो से आँसू टपक पड़े—क्या गुरुदे गरीबो पर आप भी कृपा नही करते। क्या निर्धन पुकार आप भी नही सुनते ? मेरे मे ऐसी क्या कमी जिसके कारण आपश्री लेने से इन्कार कर रहे है ?

आचार्यश्री ने कहा—तुम्हारी भक्ति मे को कमी नही है। पर तुम्हारी आर्थिक स्थिति को देखकर मैं सोचता हूँ कि न लूँ तो अच्छा है।

वृद्धा ने कहा—भक्ति के साथ धन का क्या सम्बन्ध है ? आप कृपा करे और मुझ वृद्धा की भावना को सफल करे। वर्षों से मै आपकी प्रतीक्षा कर रही थी। आज ही मेरी भावना को मूर्त रूप मिला है और आपश्री लेने से इन्कार हो रहे है। मुझ गरीब पर कृपा करो और इसे ग्रहण करो।

आचार्य ने कहा—अच्छा तो, थोड़ा-सा टुकड़ा इसमें से दे दो।

वृद्धा ने कहा—श्रद्धा-तन्तुओं से निर्मित पूरी चादर को क्या आप ग्रहण नहीं करेंगे ?

श्रद्धाभाव में विभोर शब्दों ने आचार्यश्री के हृदय को स्पर्श कर दिया। उन्होंने चादर प्रेम से ग्रहण की और उस मोटी चादर को स्वयं ने ही धारण कर लिया। आचार्यश्री को अपनी बनाई हुई चादर धारण किये हुए देखकर वृद्धा का हृदय आनन्द से झूमने लगा। आचार्यप्रवर राजस्थान में विहार करते हुए पाटन पधारे। राजा कुमारपाल अठारह अन्य नरेशों के साथ आचार्य को वन्दन करने के लिए पहुँचे। आचार्य हेमचन्द्र के शरीर पर मोटी असुन्दर चादर देखकर अन्य राजागण मुस्कराने लगे कि राजा कितना कजूस है कि अपने गुरु को वस्त्र भी प्रदान नहीं करता।

कुमारपाल ने अन्य राजाओं के मन की बात समझ ली। उन्होंने आचार्य हेमचन्द्र से निवेदन किया—भगवन्! बढ़िया रेशमी दुशाला ग्रहण कीजिए। यह मोटी चद्दर आपके शरीर पर सुशोभित नहीं होती है।

आचार्य—हम तो साधु हैं। जो भी स्नेह और सद्भावना व श्रद्धा के साथ देता है वही हमारे लिए ग्राह्य है।

कुमारपाल ने कहा—आप इसे ग्रहण करें और इस चद्दर को त्याग दें। क्योंकि लोग क्या कहेंगे कि

सम्राट कुमारपाल के गुरु होने पर भी इस प्रक
चद्दर आप धारण करे इसे देख कर मुझे लज्जा
है।

आचार्यश्री ने कहा—राजन्! मोटी और खु
चद्दर को देखकर तुम्हे लज्जित होने की आवश्य
नही है मुझे तो लज्जा इसलिए आ रही है तुम्हारी अ
स्वधर्मी वन्धुओं के प्रति जो उपेक्षा है इससे लोगो को
अनुभव होगा कि राजा कुमारपाल के स्वधर्मी वन्धु
की कितनी दयनीय स्थिति है। यही लज्जा की वात है

कुमारपाल—भगवन्! ऐसी कौन सी वात
जिसके कारण आपको लज्जा आती है।

तुम्हारी प्रजा निर्धनता से पिसी जा रही है। उ
ढकने के लिए वस्त्र नही मिल रहे है और न खाने क
अन्न ही। और तुम स्वय राजमहल में बैठकर मौज
कर रहे हो। क्या तुमने उनकी ओर दृष्टि उठाकर भी
देखा है? वे किस प्रकार खाते है, पहनते हैं, जीवन-
यापन करते है?

सम्राट ने आचार्यश्री की प्रेरणा प्राप्त कर एक
करोड स्वर्ण मुद्राएँ राजकोष से देने का वचन दिया
जिससे गरीबो की सहायता की जा सके।

आचार्यश्री की तो नही पर हजारों गरीवो की
फटी और पुरानी चद्दरे वदल गई।

× × ×

एक बार आचार्य हेमचन्द्र से कुमारपाल ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन् ! मैंने श्रावक के व्रत ग्रहण किये है। आप मेरे हाथ से भिक्षा ग्रहण करे।

आचार्यश्री ने कहा—श्रमणो के लिए राजपिण्ड वर्ज्य है। अतः आप श्रमणो के स्थान पर श्रावको को आहारादि देकर उनकी सेवा-सुश्रूषा कर सकते है।

भगवन् ! मैं श्रावक होकर श्रावको की सेवा करूं, यह कहाँ तक उचित है ?

आचार्य ने कहा—एक बार भगवान ऋषभदेव अष्टापद पर्वत पर अवस्थित थे। उस समय सम्राट भरत पाच सौ गाडियाँ स्वादिष्ट भोजन से भरकर भगवान की सेवा मे पहुँचे। आहार ग्रहण की प्रार्थना की। पर भगवान ने राजपिण्ड कहकर उसे ग्रहण नही किया। सम्राट भरत को इससे अत्यधिक दुःख हुआ। उनके मुरझाये हुए चेहरे को देखकर शक्रेन्द्र ने भगवान से पूछा—भगवन् ! अवग्रह कितने प्रकार का है ?

भगवान ने कहा—देवेन्द्र-अवग्रह, राज-अवग्रह, गृहपति-अवग्रह, सागारिक-अभिग्रह, साधर्मिक-अवग्रह—ये पाच प्रकार के अवग्रह है। इन अवग्रहो में पिछले-पिछले अवग्रह प्राप्त हो जायें तो पहले अवग्रह का कोई प्रयोजन नही है। अर्थात्, यदि राज-अवग्रह व्यवस्थित रूप से प्राप्त हो जायें तो देवेन्द्र अवग्रह की आवश्यकता नही।

भरत की ओर मुड़कर शक्रेन्द्र ने कहा-
श्रमणों को आहारादि नही दे सकते हो, पर स्व
बन्धुओ को अवश्य ही आहार आदि दे सकते हो।
जो द्वादशव्रतधारी श्रावक है उन्हे बुलाकर आप
—"तुम्हे असि, मसि और कृषि करने की आवश्य
नही। तुम स्वाध्याय और चिन्तन करो। मुझे उद्बो
दो जिससे मै राज्य की ऋद्धि-समृद्धि मे न फँसू। अ
तुम लोग मेरे भोजनालय मे भोजन करो।"

शक्रेन्द्र का यह सुझाव सुनकर भरत को प्रसन्न
हुई। उन्होने आदेश प्रसारित कर दिया। फलस्वरू
खाने वालों की सख्या अत्यधिक बढने लगी। भोजन
बनाने वालो ने सम्राट से निवेदन किया कि इतनी
अधिक सख्या बढ रही है। कौन सच्चा श्रावक है और
कौन पाखण्डी है, इसका पता लगाना ही कठिन हो
रहा है।

सम्राट भरत ने उन श्रावक समूह की परीक्षा ली
जो सच्चे और अच्छे जानकार श्रावक थे उनके सम्यक्
दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के प्रतीक रूप
में काकिणी रत्न से उनके शरीर पर तीन रेखाएँ कर
दी जो रेखाये दूर से ही चमकती थी। और जो नये
श्रावक होते थे उनकी परीक्षा लेकर उनके शरीर पर
रेखाये कर दी जाती थी। और श्रावको को इस प्रकार

सहयोग देकर भरत चक्रवर्ती अपने अतिथिसंविभाग व्रत की आराधना करता था।

इस प्रकार राजन्! तुम भी श्रावकों को सहयोग देकर अपने व्रत की आराधना कर सकते हो। समाज-सेवा करना तुम्हारा कर्तव्य है।

आचार्यश्री के उपदेश से प्रभावित होकर राजा कुमारपाल ने श्रावकों का कर माफ कर दिया जिससे बहत्तर लाख की वार्षिक आमदनी कम होने लगी। किन्तु उसने उसकी चिन्ता नहीं की। अपने स्वधर्मी बन्धुओं को सहयोग देने हेतु चौदह करोड़ मुद्राएँ लेकर एक सहायक-कोष की संस्थापना की। उन्होंने उससे अनेक दानशालाएं खुलवायीं। उत्तम भोजन, वस्त्र आदि की व्यवस्था की। इस प्रकार आचार्य हेमचन्द्र की प्रेरणा से कुमारपाल ने समाज-सेवा का महान् आदर्श उपस्थित किया।

× × ×

आचार्य हेमचन्द्र के पावन उपदेशों से कुमारपाल के हृदय में करुणा की स्रोतस्विनी प्रवाहित होने लगी थी। एक रात कुमारपाल राजमहल में सो रहा था। उसे नींद नहीं आ रही थी। रात्रि के नीरव व शान्त वातावरण में उसके कर्ण-कुहरों में किसी के रोने की आवाज आयी। राजा सोचने लगा—इस नीरव रात्रि में ऐसा कौन दुःखी व्यक्ति है जो रो रहा है? राजा

वेष परिवर्तन कर वहीं पहुंचा, जहाँ पर एक स्त्री
रही थी।

राजा ने मधुर शब्दों में पूछा - बहिन! क्यों
रही हो? तुम अपने रोने का कारण बताओ। सम
है मैं तुम्हारे काम में आ सकूं।

उस बहन ने आंखों से आंसू बहाते हुए कहा
दु:ख का कारण एक नहीं, अनेक हैं। और उनमें मु
कारण है राजा कुमारपाल।

कुमारपाल ने अपना नाम सुना तो चौंक पड़ा
मैं इस बहन के दु:ख का कारण कैसे? वह कुछ क्षण
तक सोचने लगा। उस बहिन ने कहा—तुम कहते थे
मैं सहायता करूँगा। अब चुप कैसे हो गये?

राजा कुमारपाल ने संभल कर कहा—बहन!
ाओ, राजा कुमारपाल से तुम्हें क्या दु:ख है?

उस स्त्री ने कहा—राज्य नियम के अनुसार मैं
कल भिखारिन बन जाऊँगी।

कुमारपाल—तुमने ऐसा कौन सा अपराध किया
है जिसके कारण तुम्हे भिखारिन बनना पड़ेगा? जरा
कारण को स्पष्ट करो।

स्त्री ने कहा—मेरे पति का मुझ पर अत्यन्त स्नेह
था। उसने अपना विराट् वैभव मेरे पर न्यौछावर कर
दिया था। वर्षों की प्रतीक्षा के पश्चात् मेरे एक पुत्र

हुआ। पुत्र को देखकर हम फूले न समाते थे। मेरा पुत्र बीस वर्ष का हो गया। किन्तु एकाएक कुछ घण्टों तक बीमार रहकर सदा के लिए उसने आँखें मूंद लीं। पुत्र को मरा हुआ देखकर उसके पिता उस दुःख को सहन न कर सके। उनकी हृदय-गति रुक गयी और वे चल बसे। मैं कैसी फूटे भाग्यवाली हूं। पुत्र भी मर गया और पति भी। राज्य के नियमानुसार जिसका पति और पुत्र मर जाता है उसके धन का स्वामी राजा होता है। इस दृष्टि से प्रातः होते ही मेरी सारी सम्पत्ति राजा छीन लेगा। पति और पुत्र का दुःख तो सिर पर मंडरा ही रहा है। कल भिखारिन बनकर घर-घर भीख मांगनी होगी। अतः मैं फाँसी लेकर मरना चाहती हूँ। अब बताओ तुम मेरी क्या सहायता कर सकते हो?

राजा ने दृढ़ता के साथ कहा—बहिन! तुम घबराओ मत। मैं ऐसा उपाय करूंगा जिससे तुम्हें दर-दर भटकना नहीं पड़ेगा। यदि राज्य के अधिकारी तुम्हारे पास आवें तुम उनसे कहना कि राजा कुमारपाल से आदेश ले के आओ। अब तुम आत्महत्या की बात मन से निकाल दो।

राजा उसे सान्त्वना देकर अपने महल लौट आया। उन्हें रात भर नींद ही नहीं आई। वह राज्य

नियम के औचित्य-अनौचित्य पर चिन्तन करता रहा। पुत्रहीन या पतिहीन माताओं को भिखारिन बनाना सर्वथा अनुचित है। न्याय के प्रतिकूल है। और इस प्रकार आत्महत्या के लिए उन्हें विवश करना कितना अशोभनीय कार्य है।

प्रातःकाल होते ही महाराजा कुमारपाल राजसभा मे पहुँचे। उन्होने उद्घोषणा की कि जिन माताओं के पुत्र व पति मर गये हो उनका धन राज्यकोष मे न लिया जायगा।

सामन्तो ने तथा मन्त्रियों ने समझाया—राजन्! यह नियम न बनाया जाय। क्योकि इससे राज्यकोष को प्रतिवर्ष करोड़ो रुपयो की संपत्ति प्राप्त होती है।

राजा कुमारपाल ने कहा—खून से सना हुआ धन मुझे नही चाहिए। जो धन दुःखियो के दिल में आह उत्पन्न करता है उस धन से हम राज्यकोष को सजाये यह बिल्कुल ही अनुचित है। मेरा दृढ़ निश्चय है कि इस प्रकार के धन पर मुझे नियन्त्रण करना है। मैं आचार्य हेमचन्द्र का शिष्य हूँ। मैं दूध पी सकता हूँ, खून नही पी सकता।

इस प्रकार आचार्य हेमचन्द्र के निकट सम्पर्क में रहकर राजा कुमारपाल का जीवन परिवर्तित हो गया। उसके जीवन मे हिंसा के स्थान पर अहिंसा की भावना लहराने लगी।